प्रस्तावना।

यह छोटासा निबंध है इस लिए लम्बी चौड़ी प्रस्तावना लिखकर पाठकोंका बेकार समय लेना मैं नहीं चाहता तथापि प्रास्ताविक रूपसे यहांपर इतना कह देना अनुचित न होगा कि—यह निबंध जिज्ञासुओंके लिए यदि कुछ भी उपकारक होगा तो मैं अपने परिश्रमको सार्थक मानता हुआ अवश्य सन्तुष्ट रहूंगा। गुणदोषोंकी परीक्षा करना विचारी पाठकोंपर ही निर्भर है अतः इस निबंधकी उपयोगिता और अनुपयोगितापर कहनेका मुझे कुछ भी अधिकार नहीं है। मैंने तो केवल "स्वद्धृक्तिरेव मुखरी कुरुत बलान्माम्" की उक्तयनुसार जनकल्याणवृत्तिमें तल्लीन होकर अपने विचार संकलित किए हैं। अन्तमें यह अभ्यर्थना करना मेरा धर्म है कि आत्मिक उन्नतिके लिए सन्मार्गानुगामी होना मानव मात्रका कर्त्तव्य है।

लेखक।

ॐ

सुबोध कुसुम मालिका ।

[लेखक श्रीमान बालचन्द्राचार्यजी सामगाव]

अजरामरवत्प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत ।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत ॥ [१] ॥

(हितोपदेश)

सज्जनों !

आज मैं आपके सन्मुख मानव जातिके हित संबंध में दो शब्द कहूंगा । अन्यान्य प्राणियोंसे मानव प्राणी श्रेष्ठ माना जाता है । मानव होनेपर भी जिनको अपनी श्रेष्ठताका ज्ञान नहीं हैं वे मनुष्य रूपमें पशुवत् हैं । किन्तु वे भी यदि श्रेष्ठ पुरुषोंके साथ व्यवहार रक्खें तो श्रेष्ठ होसकते हैं । हम मनुष्य किन गुणोंसे कहे जाते हैं ? अन्यान्य प्राणियोंमे हमारेमें क्या अधिक है, इन प्रश्नोंके ओर लक्ष्य देना मनुष्य मात्रका धर्म है।

संसार भी एक प्रकारकी प्रदर्शनी है । इसमें नाना प्रकारके विचित्र पदार्थ रक्खे हुवे हैं । जिसको जो पदार्थ लेना

---

१ मैं अजरामर रहूंगा ऐसी बुद्धि रखकर विद्या और धनका सम्पादन करना । मृत्युने मेरे केशों को पकड रक्खे हैं ऐसा जानकर धर्मका स्वीकार करना अर्थात धर्मानुसार आचरण रखना चाहिये । लेखक ।

हो वही ले सकता है । पुण्य, पाप, नर्की, नदी स्वर्ग, नरक, धर्म, अधर्मादि पदार्थ नय विक्रयार्थ रक्खे गये हैं । और प्राणी गण उत्साह पूर्वक लेते देत हैं । यह प्रदर्शनी अनेक विभागाम विभक्त है । इसमे एक सारस्वत विभाग अत्यन्त आश्चर्यप्रद और कौतुहल वर्द्धक एव वडा ही विशाल है । इस विभाग म अनेक विद्वान एकत्रित होकर परस्पर सवाद और प्रतिवाद कर रहे हैं। अपन २ मतव्य की पुष्टी करने म कटी नद्ध हैं । कई राजनीति का उपदेश देते हैं त कई समाज सुधारे की डिमडिमी बजा रहे हैं । कई क्षात्र धम के पक्षपाति हैं तो कह छूटा के झगडे को मचा रहे हैं। इसाइ, इस्लामी, जरथोस्ती, थीआसोफी बुद्धिष्ट, सनातनी, आर्यसमाजी, ब्रह्मसमाजी, प्रार्थनासमाजी, वल्लभी, माध्वी, रामानुजा, शाक्तमतानुयायी आदि अनेक मत मतातरों क पक्षपाति बनकर अपनी २ आर खींचाखींची म लगे हुवे हैं । कइ स्त्रियाको मुक्तिकी अनधिकारिणी कह रहे है, अथवा कवल नग्न रहना ही मोक्ष का सच्चा मार्ग कहकर पुकार रहे हैं । कई पुत्र वधू का लालन पालन एव गृहस्थाश्रम ही को सर्वोच्च तथा मुक्ति दाता मानकर इन्द्रियोंके विषयोंमें मग्न हुवे पडे हैं । कई स्वर्ग, नरक, ईश्वरादि पारलौकिक परोक्ष पदार्थोंको गप्प कहकर दुदुभी बजा रहे हैं तो कई उन्हे नास्तिक कहकर खुशी मना रहे हैं। द्वैत, अद्वैत विशिष्टाद्वैत व द्वैताद्वैत, तथा ईश्वरवाद, सृष्टिवाद, कारणवाद, परमाणुवाद, शून्यवाद, क्षणिकवाद, शक्तिवाद, आदि एकान्त वादके पक्षमें पडकर चिल्ला रहे हैं ।

प्रदर्शनीके इस विभागके सिवा और २ विभाग भी खूब आनन्दप्रद हैं। देखिए! कहीं पर खुशी तो कहींपर गमी, कहींपर कई कुछ कह रहे हैं तो कई कुछ सुन रहे हैं। कई समझा रहे हैं तो कई समझ रहे हैं। कई हँसते है तो कई रोते हैं। कहीं पर श्रीमान आनन्द उडा रहे हैं तो कहीं पर दीन-दरिद्री अन्न २ पुकार रहे हैं। कई अन्ध हैं तो कई मूक है।

सिवा इसके इस प्रदर्शनीमें कई ख्याल तमाशे भी हैं, उनको भी देख लीजिये!

दूसरे का बालक कैसा ही सुंदर क्यों नहो, परन्तु अच्छा प्रतीत नहीं होता, न आनंद आता, और उस पर प्रेम करने की इच्छा तक नहीं होती, यदि उसको किसी कारणवश गोदमें लेलिया जाय और वह कदाचित् मल-मूत्र करदे तो घृणा की सीमा तक नहीं रहती परन्तु स्वयका बालक कैसा भी कुरूप क्यों नहीं बारबार देखने पर नेत्रोंकी तृप्ति नहीं होती, हाथों में खेलते हाथ नहीं थकते, सोसो वार मल-मूत्र कर देने पर भी घृणा समीप तक नहीं आती। अन्य के लिए सामान्य कार्य करने मे अति क्लेश प्रतीत होता है परन्तु उससे शतगुणाधिक्य क्लेशजनक एव कष्टसाध्य कार्य भी स्वय का हो तो प्राण पणसे साधन करनेमें भी क्लेश प्रतीत नहीं होता। दूसरे के अधिकार का अनर्गल द्रव्य नष्ट हो जाय तो उसमें अंशमात्र तक दु ख नहीं होता किन्तु स्वय का अल्पानल्प द्रव्य नष्ट होने लगे वा हो जाय तो उसकी रक्षा करने में परिश्रम की सीमा तक

नहीं रहती। दूसरे के पदार्थों तथा धन-सम्पति को देख निन्दा करने में कुछ भी सकोच नहीं होता, परतु वह वही स्वय-के लिए हो जाने पर निंदा क स्थान पर प्रशसा करते २ जिव्हा थकती भी नहीं। अन्यका गुण अन्यकी विद्या, अन्यका यश श्रवण करने में क्लेश होता है परतु वैसा स्वयके लिये सुनकर-देखकर हर्ष में फूले मिग्रा नहीं रहा जाता। अन्यके शरीर पर अल्पमूल्य वस्त्र-भूषण देखकर जी जलने लग जाता है परतु स्वय के शरीर पर उससे महस्र गुणाधिक्य रत्नादिका के आभूषण एव वस्त्र यदि धारण करवा दिये जाँय तो भी इन्कार एव अस्वीकार नहीं किया जाता। कहिये प्यारे मित्रों! यह खेल तमाशे नहीं हैं तो और क्या हैं? विचार पूर्वक देखा जाय तो क्या शरीर सतत रहनेवाला है? नहीं। जिन इन्द्रियोंकी तृप्ति करने में हम रात दिन मशगूल हैं क्या! वे इन्द्रियें हमें धोखा नहीं देंगी? मनने तो चञ्चल स्वभाव प्रथम ही से स्वीकार रक्खा कर है। शरीर नाश होनेवाला है, भला फिर इसपर इतना मोह क्यो? परतु इसीका नाम प्रदर्शनी है। ससार की विचित्रतामें फसकर जीवात्मा सत्यस्वरुप विचार तक नहीं करने पाता। अपने निजके गुणोकी ओर लक्ष्य तक नहीं पहुँचाता। यदि सत्य के लिए विचार करने लग जायँ और अपने स्वरूप को पहचान लें ता ससार प्रदर्शनी की गली-कूँचों में भटने का प्रयोजन नहीं है। प्यारे पाठकों!

धर्मक्या वस्तु है ? उससे क्या लाभ है ? उसकी आवश्यकता किस लिए है ? इस बातका विचार करना चाहिये। क्योंकि, प्राय सारा ससार धर्म शब्द का आदर करता है। बडे २ लोक कहा करते है कि —

धर्म करत ससार सुख–धर्म करत निरवाण ।
धर्म-पथ साधन विना–नर तिर्य्यच समान ॥ १ ॥

धर्म शब्द ऐसा गुरुतर है कि इसका आदर प्राय सभी मानवप्राणि करते हैं। चौर, स्त्रैण, हिंसक, असत्यवादी, लोभी, कपटी, कृतघ्नी अपराधी, दु खी, सुखी, नीच, ऊँच, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई वुद्धिष्ट आदि सभी मत–मतान्तरवाले धर्म शब्दके वशीभूत हैं। न्यायालयमें भी धर्म की शपथ खाकर कहने से जज सुनता है। ऐसा जाय तो यह बात निरसन्देह सत्य है कि–धर्म भी कुछ पदार्थ अवश्य है। तभी तो सारे ससार पर इतना प्रभाव डाल रहा है। किन्तु विचार करने की बात यह है कि–ससार मात्र के मानव प्राणी धर्मी हैं तो फिर किसी को अधर्मी कहना या मानना नहीं बन सकता और न किसी को सुधार करना शप रहा अत जो प्रयत्न किये जारहे हैं व सब व्यर्थ ठहरेंगें। एव अधर्म शब्दका कोशमेंसे नाम तक निकाल देना और उसका उच्चार एव व्यवहार भी नही करना होगा। परन्तु ऐसा मानना भी भूल है। क्यों कि अधर्म शब्दका अस्तित्व भी बडे जोर-शोर के साथ दिखाई दे रहा है। प्राय यावन्मात्र मानव प्राणी अपने ? लिये त्याग दूसरो के लिये अधर्म शब्द

का व्यवहार एव उचार बडे आनद के साथ करते हैं । जिस किसी से पूछा जाय तो वह अपने लिये तो यह अवश्य ही कहेगा कि—मैं पापी नहीं हू । मैं झूठा नहीं, मैं लबाड नहीं, मेरे में कुछ भी ऐब नहीं, मैं निलकुल सीधा सादा मनुष्य हू । और फलां २ एसा झूठा है जिस की सीमा नहीं है । अमुक एसा अधर्मी है, पापी है, अपराधी है इत्यादि इत्यादि अन्यके लिये कहने में कभी संकोच नहीं होता । अतएव अधर्म शब्द का बल भी संसार में कुछ कम नहीं है । भला फिर संसार मात्र के मानव-प्राणी धर्मी कैसे हो सकते हैं ? इसलिए कहा जाता है कि शब्द मात्र से धर्म शब्द का स्वीकार तो सब कोइ करते हैं परन्तु धर्मका असली स्वरूप जाननवाले संसार में बहोत थोडे हैं । इस लिये इस बात की जांच करना अत्यावश्यक है । एक तत्ववेत्ता महर्षि इसके संबंध में कह रहे हैं कि —

त शब्द मात्रेण वदन्ति धर्मं,
विश्वेपि लोका न विचारयन्ति ।
स शब्द साम्येपि विचित्र भेदै—
र्विभिद्यते क्षीरमिवाऽतनीय ॥ १ ॥

इसका भावार्थ यह है कि—लोक शब्द (वाणी) मात्रसे ही धर्म धर्म कहते हैं परन्तु धर्मके संबंध में विचार नहीं करते । शब्द का साम्यतामें भी अनेक भेद रहे हुवे हैं । जैसे गाय, भैंस, बकरी आदि के दूध में समान रूप होनेपर भी गुण धर्म समान नहीं हो सकता । यानी दूध कई प्रकारके हैं, तद्वत

धर्मोंके सम्बधमें भी भेदान्तर समझ लेने चाहिये क्यों कि— धर्म शब्द की साम्यतामें अनेक भेद रहे हुवे हैं अतएव विचार पूर्वक ही धर्म का स्वीकार करना मंगलप्रद है। धर्मके संबंध में दुराग्रह अथवा पक्षपात करना, तथा "वाबावाक्य-प्रमाण" मानकर बैठ रहना अनुचित है। इस विषयमें एक महर्षि कह रहे हैं कि—

> लक्ष्मीं विधातु सकलां समर्थं,
> सुदुर्लभं विश्वजनीनमेन।
> परीक्ष्य गृह्णाति विचारदक्षा,
> सुवर्णवद्वंचन भीतचिता ॥ १ ॥

इसका भावार्थ यह है कि जैसे ठगाजानेके भयसे सुवर्ण-की परीक्षा (तापन ताडन छेदन कसनिरीक्षण) करके लेते हैं, वैसेही विचारवानोंने धर्मकी परीक्षा करके ग्रहण करना चाहिये। क्या कि सपूर्णतया लक्ष्मी देनेमें समर्थ, जगद्धितकारी, अत्यन्त दुर्लभ, ऐसे अमूल्य धर्मको ग्रहण करनेमें जो लोक विचार नहीं करते हैं वे अज्ञहो कहे जा सकते हैं।

सम्प्रति धर्मके सम्बधमें उदासीनता और ऐहिक सुखोंकी ओर लक्ष्य विशेष वढता जारहा है। कई स्वार्थांध तो यहांतक कह दिया करते हैं कि—"हम धर्मकी जाँच करके क्या करना है!" तथा "पूर्वजासे जो चला आता है वही ठीक है" अथवा "हमारे पूर्वज अगर नरकम गये हैं तो अब अकेले हमें स्वर्ग जाकर क्या करना है?" इत्यादि।

क्याही आश्चर्यकी बात है कि–जिसका मूल्य सब पदार्थोंसे बढ-बढ कर है ऐसे पदार्थकी जाँच करनेकी जिन्हें फुरसत नहीं हैं उनके लिए" मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति " की उक्ति क्या अनुचित हो सक्ती है ? क्यो कि—

> आहारनिद्राभयमैथुनानि,
> सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम् ।
> धर्मा हि तेषामधिको विशेषो,
> धर्मेण हीना पशुभि समाना ॥ १ ॥

अर्थात् आहार, निद्रा, भय और मैथुन यह चार तो पशु और मनुष्यमें समानही हैं। किन्तु मानव प्राणिमें केवल धर्म ही अधिकतर है। इस लिए धर्महीन मनुष्य भी पशु के समान है।

उपरोक्त काव्यसे भी यही सिद्ध होता है कि जो मनुष्य होनेपर भी धर्म सम्बधी जाँच नहीं करता है उसे तत्व–दृष्टि साक्षर तो पशुही मानते हैं। विचार किया जाय तो यह मानव देह वारवार मिलना कठिनतर है। सद्विचार बुद्धिद्वारा एव आत्मिक गुणोंको प्रकट करनेमें धार्मिक तत्वाकी सहायता लेना अत्यन्त आवश्यक है। ऐहिक कायाको गौणमानकर एव पारमार्थिक कार्योंकी ओर लक्ष्य देकर आत्मस्वरूपको समझनेका प्रयत्न करना चाहिये। तभी सत्य समझनेमें आ सकता है।

शास्त्रकारोंने प्राणियाके लिये चार पदार्थोंका मिलना दुर्लभ कहा है वे ये हैं —

चत्तारि परमगाणि दुल्लहाणिहि जतुणो ।
माणुसत्त सुई सद्धा-सजम तह वीरिय ॥ १ ॥

इस गाथाका भावार्थ इस प्रकार है कि—१-मनुष्य भव, का मिलना, २-सत्शास्त्रोंका श्रवण, ३-तदनुसार शुद्ध श्रद्धान-और ४-सयममें बल वीर्यका व्यय करना ये चार धर्मप्राप्तिके उत्कृष्ट अङ्ग पाना ससारी जिवोंके लिए दुर्लभ कहा है। पूर्व पुण्योदयसे मनुष्यभव मिल जाने पर भी शेष तीन अगोंको प्राप्त करनेका जो प्रयत्न नहीं करता उसने मनुष्य भव पाया और न पाया समान ही मान लेना चाहिये। क्यों कि शेषके तीन अगोंको प्राप्त करनेका मुख्य अधिकार केवल मनुष्य ही को है। अत जिज्ञासुओंने शेषके तीन अगोंको प्राप्त करनेका अवश्य प्रयत्न करना चाहिये।

सत्शास्त्रोंका श्रवण, तदनुसार शुद्ध श्रद्धान और विशुद्ध सयम ये तीनोंही उत्कृष्ट अग-सत्सगसे मिल सकते हैं। सत्सग के प्रभावसे मूर्खसे भी मूर्ख विवेकी हो जाता है। "सत्सगात भवति हि साधुता खलाना" तो फिर प्रयत्नशील पुरुष सत्सगसे आशातीत लाभ उठावें उसम आश्चर्य ही क्या है? कहा है —

मृगतृष्णासम वीक्ष्य, ससार क्षणभगुरम ।
सज्जनै सगत कुर्याद्धर्माय च सुखाय च ॥ १ ॥

हितोपदेश

भावार्थ, मृग तृष्णाके समान क्षणभगुर ससारको देखकर धर्म और सुखके लिये सज्जनोंका सग करना चाहिये।

सदाचारका पाया सज्जनोंका सग है यथा कि—" साधू-नाच यथावृत्तमेतत्साचारलक्षण " अर्थात् महात्माओंका आचरण सदाचार कहा जाता है। अत ऐसे सज्जन-महात्मा पुरुषों द्वारा शास्त्रोंका श्रवण-मनन करना चाहिये कि जो बाह्याभ्यतर शुद्ध एव परोपकारमे दत्तचित्त हों। क्यों कि सत्शास्त्रोंका रहस्य ऐसों के सिवा अन्य ठौर नहीं बतला सकते। कई स्वार्थी वक्ता अडग बडग ल्गा कर भोले प्राणियाको अपनी मायाजालमें फसा लते हैं। परतु याद रहे वे स्वय डूबते हैं और अपने फन्दमें फसने-वालेको भी डुबाते हैं। अत सत्शास्त्रोंका श्रवण-मनन तत्त्वदृष्टि महात्माओं द्वारा ही करना श्रेयस्कर है।

कई श्रोताओं ऐसे हैं कि-सज्जन महात्माओंके मुखद्वारा सत्शास्त्र श्रवण करनेका अवसर प्राप्त होनेपर भी सुनते समय जिनका मन कहीं पर है और तन कहीं पर है! प्रथम तो महात्माओंका योग मिलना कठिन तर है यदि मिलजाय तो श्रोता अहंतावश अवसर का आ बैठते हैं इसलिये त्यागी महात्माओं द्वारा सत्शास्त्रो का श्रवण होना दुर्लभ कहा है। दैवयशात् श्रवण हुआ भी तो विशुद्ध श्रद्धान होना अत्यत दुर्लभ है। अतएव श्रवण मनन, निदिध्यासन, चिन्तवन एव तर्क वितर्का द्वारा शुद्ध श्रद्धा को हृदयमे दृढ जमा लेना चाहिये। ससार से उत्तीर्ण होने में शुद्ध श्रद्धा की बडीही आवश्यकता है। " दसण भट्ठस्स नत्थि निव्वाण " अर्थात् भ्रष्ट श्रद्धावालेका कल्याण किसी समय नहीं हो सकता। इसीलिये शुद्ध श्रद्धा-पाना दुर्लभ कहा है। हमारी समझ से तो सब विषयों मे यह

विषय समझना कठिनतर है। यदि इस विषय को उत्तम रीत्या समझ लें तो शेषके विषयों को समझना आसान जाता है। मिथ्यात्वके उदय में जीवात्मा विशुद्ध दृष्टि नहीं हो सकता। अत दृष्टिको शुद्ध करने में मानसिक परिश्रम की अत्यत आवश्यकता है। तृतीय अगकी प्राप्तिके पश्चात् यदि चतुर्थ अग (यम-नियमादि) को प्राप्त करनेका प्रयत्न किया जाय तो सार्थक हो सकता है (क्यो कि शुद्ध दृष्टिके विना सयम पूर्ण फल नहीं देसकता) इसीलिये सर्व-दर्शी महात्माओंने-तृतीय पदपर श्रद्धाको और चतुर्थ पदपर सयमको रक्खा है। तात्पर्य यह है कि श्रद्धा युक्त चारित्र फल देता है। वस्तुका यथार्थ ज्ञान होनेमे श्रद्धा विशुद्ध हो-जाती है। और तदनुसार आचरण होना नाम सयम है। "देहस्य सार व्रत धारण च" नियमवद्ध रहनेमे मनुष्य आचारच्युत नहीं हो सकता और आचारच्युत न होनेमे शारीरिक और मानसिक शक्तिका विकाश होता है इस लिये मनुष्यमात्रको नियमवद्ध रहना सर्वथा योग्य है। और यही देहका सार है।

धर्म प्राप्तिका एव धर्मी होनेका चतुर्थ अग जो सयम में वल-वीर्य फोरना (लगाना) कहा है। परतु किस रीत' फोरना और किन २ नियमोंमे वद्ध रहना चाहिये ? इसका यहापर विवेचन किया जाता है। अर्थात् धर्म प्राप्ति के चतुर्थ अग के लिए जो नियम कहे है और जिन नियमों के पालनेमे प्राणी पूर्ण धर्मी हो जाता है उनका यहापर सक्षेपत दिग्दर्शन मात्र कराया जाता है —

" उत्तम क्षमा-मार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागा किञ्चन्य ब्रह्मचर्याणि धर्मः (तत्वार्थ-- अ०--९--सू० ६)

भावार्थ --क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, अकिंचन, और ब्रह्मचर्य ये दश धर्म के मुख्य एवं उत्तम नियम हैं । ये जिनमें हों वेही सच्चा धर्मी हैं । इनमें से एक २ धर्म ऐसा है कि जिसके स्वीकार करने से मनुष्य भवका सार्थक हो सकता है । ये दश नियम जिसमें हों उसकी गणना उच्च कोटी के महात्माओं में होती है । अर्थात् ये दश धर्म उत्तम कोटी के यतियों में ही हुआ करते हैं ।

मन्वादि अन्यान्य ग्रंथकारोंने भी धर्म के दश लक्षण कहने में केवल शाब्दिक परिवर्तन किया है परन्तु भावार्थ प्रायः मिलता जुलता है । देखिए, मनुस्मृति अध्याय ६ श्लोक ९२ पर लिखा है —

> धृति क्षमादमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
> धीर्विद्यासत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

इसका भावार्थ इस प्रकार है, धारणा, क्षमा, दम, अचौर्य, शौच, इन्द्रियनिग्रह, विज्ञान, विद्या, सत्य और अक्रोध ये दश लक्षण धर्म के हैं ।

१-शास्त्रकारोंने कर्तव्य भेदसे धर्मके भेद बताये हैं, कार्यको कारण में उपचार करके भेद कहे हैं । इनको यदि धर्म के मुख्य नियम कह दिये जाय तो भी कोई दोष नहीं । लेखक

याज्ञवल्क्य कहता है —

सत्यमस्तेयमक्रोधो ह्री. शौच धीधृतिर्दमः ।
सयतेन्द्रियता विद्या धर्म सर्व उदाहृतः ॥

(याज्ञवल्क्य अ० ३ श्लो ६६)

सत्य, अस्तेय, अक्रोध, ह्री, शौच, धी, धृति, दम, इन्द्रियदम, और विद्या ये साधारण (सभी) धर्म के लक्षण हैं ।

इसी प्रकार महाभारतमें भी कहा है —

सत्यं दमस्तप शौच सन्तोषो ह्री' क्षमार्जवम् ।
ज्ञान शमो दया दानमेष धर्मः सनातनः ॥

अथवा —

इसी प्रकार महाभारत शातिपर्वमें पाच यमोंका वर्णन है ।

अहिंसासत्यमस्तेयत्यागो मैथुनवर्जनम् ।
पञ्चस्वेतेषु धर्मेषु सर्वे धर्म्मा प्रतिष्ठिता ॥ ? ॥

अहिंसा, सत्य, अचौर्यत्व, परिग्रहत्याग और ब्रह्मचर्यका पालन इन पाच यमों में सभी धर्म्मोंका समावेश हो जाता है ।

वास्तवमें इन पाचोंमें प्रायः दशका अन्तर्भाव भी हो जाता है । एक स्मृतिकारनें केवल आठ ही भेद कहे हैं । वे ये हैं:—

इज्याध्ययनदानानि तपः शौचं धृतिः क्षमा ।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः ॥

यद्यपि इस श्लोकमें आठ ही भेद कहे हैं किन्तु उपरोक्त दश धर्मोंसे ये आठभी प्रायः मिलते जुलते ही हैं।

श्रीमद्भगवद्गीतामें इन्हीं दश नियमों से मिलते जुलते कोई २६ धर्म दर्शाए हैं किन्तु दश नियमोंमें उन २६ छब्बिसों ही का अन्तरभाव हो जाता है । वे ये हैं --

अभयं सत्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥१॥
अहिंसासत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दयाभूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥२॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥३॥

(गीता अ० १६ श्लोक १-२-३)

श्रीकृष्णजी अर्जुन प्रति कहते हैं कि-हे अर्जुन ! अभय, चित्तकीशुद्धि, ज्ञानयोगमें स्थिति, दान, इन्द्रियोंका दमन, यज्ञ, तप, स्वाध्याय, सरलता, अहिंसा, सत्य, क्रोधहीनता, त्याग, शांति, पराक्षमें परनिन्दाका त्याग, सब प्राणियोंमें दयाका करना, कोमलता, लज्जा, अचपलता, तेजयुक्त होना, क्षमायुक्त रहना, धैर्य रखना, शौच रहना, द्रोह न करना, और अभिमान न करना ये उन्नीस धर्म दैवी (सत्वगुणमयी) प्रकृतिका आश्रय करके जन्म धारण करनेवालेमें होते हैं ।

उपरोक्त प्रमाणोंमें यह बात सर्व सम्मत पाई जाती है कि—" क्षमा-मार्दव ' आदि दश धर्म जो कहे हैं उनको किसी न किसी रूपमें भारतवर्षके सभी तत्ववेत्ताओंने स्वीकार अवश्य किए हैं। अर्थात् धर्मके दश लक्षण सर्वमान्य हैं।

१—क्षमा—का अर्थ सहनशीलता अथवा क्रोधका निग्रह करना है। क्षमा जिसके हृदयमें निवास कर रही हो वह आनन्दसे साथ आपत्तिसे उत्तीर्ण हो सकता है। क्रोधसे संतप्त मनुष्य क्षमाकी छायाके नीचेमें निकलने ही से शान्त हो जाता है। क्षमामें ऐसी शक्ति है कि जिसके द्वारा चरम तीर्थंकर श्रीमन्महावीर प्रभुने दारुणादारुण उपसर्गोंपर जय प्राप्त की। अनन्तबली होने पर भी अपने बलका कुछ भी परिचय न देकर एवं केवल आत्महित की ओर दृष्टि रख क्षमा द्वारा पूर्वकृत कर्मोंका नाश किया था। इसी प्रकार नवम वासुदेव श्रीकृष्णचन्द्रके लघुभ्राता गजसुकुमाल मुनीश्वरके मस्तिष्क पर उनके श्वसुरने स्मशानकी धगधगती अग्नि रखकर प्राण लिया तो भी प्राणनाश तक क्षमा पूर्वक आत्मध्यानमें तल्लीन रहे थे और जिन्होंने शरीरपालनाकी ओर अंशमात्र भी लक्ष्य नहीं दिया। इसी प्रकार राजगृहीके सम्राट् श्रेणिकके जामाता मेतार्यमुनिको स्वर्णकार द्वारा असह्य यातना होने पर भी सहनशीलताका त्याग नहीं किया। यद्यपि क्षमाके अनेक भेद हैं किन्तु उभयलोक साधनमें सहायकारी क्षमा है वही आदरणीय है। क्षमाके लिए महाभारतमें लिखा है कि—

क्षमावतामय लोक पर श्चैव क्षमावताम् ।
इह सन्मानमृच्छन्ति परत्र च शुभ गतिम् ॥ ६३ ॥

लौकिकमें भी क्षमाके अनेक उदाहरण प्रचलित हैं। जैसे कि—

क्षमा बडन कों चाहिए ओछनकों उतपात ।
कहा कृष्ण को घटगयो भृगुने मारी लात ॥ ? ॥

भाषा कविने भी महत पुरुषके लिए क्षमा गुणकी आवश्यकता कही है। कहते हैं कि विश्वामित्रने वशिष्ट मुनिके एकसो (१००) पुत्र मार डाले थे तो भी वशिष्टजी विश्वामित्र पर कुपित नहीं हुए। भारवि कविने किरातार्जुनीय काव्यके दूसरे (२) सर्गमें क्षमाके सम्बधमें लिखा है कि—

उपकारकमायतेर्भृश, प्रसव कर्मफलस्य भूरिण ।
अनपायि निबर्हण द्विषा, न तितिक्षासममन्य साधनम् ॥

अर्थात्—भविष्यमें अत्यन्त उपकारकी करनेवाली, अनेक शुभ कर्मोके फलकी उत्पन्न करनेवाली, स्वय अविनाश होने पर भी शत्रुओंका नाश करनेवाली, क्षमाके समान अन्य साधन ससारमें नहीं है इसी प्रकार उपमिति भवप्रपञ्च कथामें सिद्धर्षि मुनि क्षमाकी श्लाघा करते हुए कहते हैं कि—

क्षान्तिरेव जगद्वंद्या, क्षान्तिरेव जगद्धिता ।
क्षान्तिरेव जगज्ज्येष्ठा, क्षान्ति कल्याणदायिका ॥

भावार्थ–क्षमा संसारमें पूज्य है, क्षमा संसारकी हितकारिणी है क्षमा जगतमें ज्येष्ठ एव श्रेष्ठ है और क्षमाही कल्याण देनेवाली है। अतएव उपरोक्त महानुभावोंके दृष्टांतोंको तथा वचनोंको स्मरणमें रखकर क्षमाका अवलम्बन करना चाहिये। परंतु क्षमाके सम्बंधमें इतनी बात अवश्य स्मरणमें रखनी चाहिये, कि–क्षमा अधिकारपरत्व है। यदि राजा शासन करनेमें तथा गुरु शिष्यको पढानेमें क्षमा करे तो अनवस्था दोष आये सिवा नहीं रह सकता अतः शांति एव प्रजाके रक्षणार्थ राजा और शिष्यको भविष्यमें श्रेष्ठ बनानेके लिये गुरु जो बाह्यरूपमें क्रूरता दर्शाते हैं वे भी एक प्रकारसे क्षमा देवीका साम्राज्य संसारमें स्थापन करनेके हेतु रूप हैं। वर्तमानमें भी महात्मा मोहनदास कर्मचंद गांधीने क्षमायुक्त सत्याग्रहसे जो कार्य आफ्रिकामें करके बतलाया है वह सब ही पर विदित है। देखिये, क्षमावान् क्या नहीं कर सकता? अर्थात् सब कुछ कर सकता है। क्षमा प्रगल्भ बुद्धिका गुण है। इसी लिए आदरणीय है।

२ —मार्दव-अभिमानके अभावको मार्दव कहते हैं। मानके त्याग बिना मानव उच्च दशाको प्राप्त नहीं कर सकता। "अभिमान–सुरापान" मानको मदिरापानके समान माना है। जैसे मदिराके पीनेसे मनुष्य विवेकशून्य हो जाता है तैसे ही अभिमानके योगसे मानव अविवेकी हो जाता है। इस लिये विद्वानोंने कहा है कि–" माणोविणयनासओ " अर्थात् अभिमान् विनयगुणका नाश करनेवाला है। यह बात इतिहाससे भी सिद्ध है कि अनेक राजाओंका राज्य, अनेक सेठियोंकी सेठाई, तप-

स्त्रियोंकी घोर तपस्या, विद्वानोंकी विद्वत्ता, क्रियावादियोंकी क्रिया, मंत्रवादियोंकी मंत्रशक्ति, मानरूप मातंगने समूल उखाडकर फेंक दी है। मानरूप मातंगके वशीभूत हुआ कि प्राणी धर्मसे च्युत हो जाता है। इसी लिये शास्त्रकारोंने कहा है —

> विनयश्रुतशीलानां त्रिवर्गस्य च घातकः ।
> विवेकलोचनलुम्पन् मानोऽपकरणे नृणाम् ॥ ३ ॥

भावार्थ — अभिमान यह विनय, श्रुत, और शीलका घात करनेवाला है और विवेकरूप नेत्रोंको फोडकर अंध बना देता है।

जाति, लाभ, कुल, ऐश्वर्य, बल, रूप तप और श्रुत इस प्रकार आठ भेद मानके हैं। किन्तु इन्हीं आठ वस्तुओंका नाश अकेले अभिमानसे हो जाता है। अभिमानसे बुद्धि नष्ट होकर कर्मोंका संग्रह अधिकाधिक होता है। इस लिये मान अकल्याणकारी होनेसे सर्वतोभावसे त्यागनेके योग्य है।

३—आर्जव-दंभ, कपट, माया, ठगना, मिथ्याभाषण धोखा देना आदि दोषोंके अभावहीका नाम आर्जव है। दुष्टभावोंका त्याग और सरल भावोंका ग्रहणरूप आर्जवके होनेसे लौकिकमें भी उसके वचनोंका विश्वास किया जाता है और परलोकमें सद्गति मिलती है। चाहे वैसा उत्तम चारित्रवान मुनि क्यों न हो! यदि दंभका त्याग नहीं हुआ है तो उसकी सभी क्रियाएँ एवं उसका चारित्र अर्थरहित होजाता है। कपटके

समान कोई बडा पाप नहीं है। "विषकुंभ पयोमुखम्" होना दोनों लोकोंमें अध पतनका कारण है। कहना कुछ और करना कुछ यह कैसा अनर्थ है ? इस बातको सुज्ञ भली भांति समझ सकते है। इसपर एक भाषाकविने धोका करनेवालोंके नामोंकी सूची बतलाई है। वह कवित्त इस प्रकार है —

" धोखेमे रावणने सीताको हरण की धोखेमे कौरवोंने जीत लियो दावको। धोखेसे राजा बली छल्यो जाय वामन बन धोखेमें हनानो वाली जानके प्रभावको। धोखेमे विष्णुने डिगायो सत्य विंदाको मालिग्राम जान्यो नहीं सतीके स्वभावको। ऐसी भोली भालीको धोखेसे छल कीनो कहा है ठिकानो भला ऐसे अन्यायको " ॥ १ ॥

" माया मित्ताणि नासेइ " अर्थात माया मित्राईका नाश करनेवाली है। कपटीका कोई मित्र नहीं होता। मल्लिनाथ स्वामीके जीवने पूर्वभवमें दंभ किया था उसका जो फल मिला वह प्राय सबको विदित ही है। इसी प्रकार पीठ-महापीठ दंभसे कितने दु खी हुने थे यह बात भी सब कोई जानते हैं। अंध, मूक और नपुंसकत्व आदि अंगोपांगोंसे हीन होना यह कपटकाही प्रभाव है। गुरुतर दंभ करनेवालेका अध पतन शास्त्रकारोंने निगोद तक कहा है। इसलिए

तदार्जव महौषध्या—जगदानंदहेतुना।
जयेज्जगद्द्रोहकरी—मायां विषधरीमिव ॥ १ ॥

संसारके आनंदके हेतुरूप आर्जव रूपी महान् औषधी

द्वारा जगतका द्रोह करनेवाली, मायारूप नागनीका जय करना चाहिये।

४— शौच–लोभरहित होना, संतोष रखना इसका नाम शौच है। लोभ मनको अपवित्र (मलीन) कर देता है। इस लिये अलोभका पर्यायवाचक नाम शौच है। लोभीका सभी स्थानोंपर अनादर होता है। शास्त्रकारोंने " लोहो सव्व विणा सई " लिखा है। अर्थात् लोभ सर्वस्वका नाश करनेवाला है। मुझे लाख रुपये मिलें, क्रोड मिल, राज्य मिलें, चक्रवर्ती पद मिले, इन्द्रासन मिल, इस प्रकार उत्तरोत्तर तृष्णाकी अभिवृद्धि जीवात्माको अनादिकालसे संसारका परिभ्रमण करा रही है। अनेकानेक बार इच्छित पदार्थोंके मिलनेपर भी संतोष नहीं होता ? इसपर जिनरख जिनपाल तथा कपिल मुनिका दृष्टात पर्याप्त है। शौचका अर्थ पवित्र होना भी है। और जब लोभदशा मिटकर संतोषदशा आ जाती है तभी अंतरंग पवित्र होता है। इसी लिये अलोभके स्थानपर शौच शब्दका प्रयोग किया गया है। यद्यपि कई मतमतांतरवाले केवल मृत्तिका और जलसे शुद्ध होना मानते हैं। परंतु मृत्तिका और जलसे केवल बाह्य शरीरकी शुद्धि कर सकता है। किन्तु आत्माकी शुद्धि मृत्तिका और जलसे नहीं हो सकती। आत्माकी शुद्धि तो संतोषसे ही हो सकती है। इस लिये भावशुद्धिका कारण अलोभ होनेसे सच्चा शौच धर्म इसीको मानना उचित है। शौचके संबंधमें मनुका मत है कि—

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति ॥ १०९ ॥

(मनु० अ० ५)

नोदकक्लिन्नगात्रस्तु स्नात इत्यभिधीयते ।
स स्नातो यो दमस्नात, स बाह्याभ्यन्तर शुचिः ॥९॥

(मनु० १०८)

अर्थात् महात्माजन केवल जलसे नहाये हुवेको ही नहाया हुआ नहीं कहते किन्तु दम-(भावशौच) कोही सच्चा न्हाना हुआ कहते हैं। क्यों कि अलोभसे बाह्याभ्यन्तरकी पवित्रता हो जाती है। क्यों कि " एको लोभो महाग्राहो लोभात् पाप प्रवर्तते " अर्थात् एक लोभसे अभ्यन्तरकी पवित्रता चली जाती है। अत लोभका त्याग ही भावशौच है।

५— सत्य-पदार्थोंके यथावस्थित लक्षणोंका एव स्वरूपका कथन ही सत्य है। कठोरता, पिशुनता, अश्लीलता, मालिन्यता, मिथ्यादोषोंसे रहित एव रागद्वेषवर्जित, मधुर, उज्वल, असंदिग्ध, सदेहरहित, स्फुट, औदार्य और अनुग्रह करनेवाला आर्हदर्शनानुसार प्रशस्त कथन करना यही सत्यके लक्षण हैं। सत्यकी श्लाघामें अन्यान्य ग्रथकार भी जो कुछ कह रहे हैं वह सुनिये।

अश्वमेधसहस्राणि—सत्य च तुलया कृतम् ।
अश्वमेधसहस्राद्धि —सत्यमेवातिरिच्यते ॥ १ ॥

इसका भावार्थ इस प्रकार है कि,—सहस्रा अश्वमेध यज्ञ और सत्य तराजू (तुला) में धरकर तोल गये तो सहस्र अश्वमेध यज्ञोंसे भी सत्यका पलडा भारी रहा। अर्थात् दोनोंकी तुलना करनेमें सत्यही गुरुतर रहा। सत्यकी महिमा प्राय सभी ग्रंथोंमें है। और सत्यप्रिय यहबात भली भांति जानते भी है अत विशेष विवेचनकी कोई आवश्यकता नहीं है।

६—संयम-मन, वचन और शरीर इन तीनोंका निग्रह अर्थात् इन तीनोंको वशमें रखना इसीका नाम संयम है। संयमके १७ भेद कहे है। जीवमात्रकी रक्षा और इन्द्रियोंका निग्रह करना, इसीमें सब भेद अतर्गत हो जाते हैं। विद्वान् होने पर भी जो इन्द्रियोंके वशीभूत है वह तो बालचेष्टा किये बिना नहीं रह सकता तब औरके लिए तो कहनाही क्या है ? राजा भरत चक्रवर्ती इन्द्रियोंके वशीभूत होनेपर अपने लघुभ्राता बाहुबली पर (द्रोह करनेकी इच्छासे) सैन्य चढाकर गया परन्तु बाहुबलीने इन्द्रिया पर जय प्राप्त की हुई थी और भरत पर इन्द्रियोंने जय प्राप्त की थी इस लिये युद्धमें भरतका पराजय और बाहुबलीका जय हुआ। इन्द्रियोंके वशीभूत हुये, बडे २ तपस्वी भी निंदनीय कार्योंके करनेमें संकोच नहीं किया करते है। और यह बात इतिहासज्ञ विद्वान भलीभांति जानते हैं। मतंग, पतंग, कुरंग, मीन और भ्रमर आदि प्राणियोंको तो एक २ इन्द्रिय के वशीभूत होनेपर एव लोलुप्यतावश प्राणान्त तक कर देना पडता है। अत जो पांचों इन्द्रियोंके विषयोंसे लोलुपी हैं उनका अध पतन एव सर्व-

नाश क्या न हो ! इसलिये मनुजीने इन्द्रियोंके निग्रह एव संयम-का उपदेश किया है ।

अन्यान्य शास्त्रपर भी इन्द्रियदमन (एव संयम) के लिये लिखा है कि—

" या जित पंचवर्ग, सहजेनानुकर्षिणा ।
आपदस्तस्य वर्द्धते, शुक्लपक्षे इवोडुराट् " ॥ ५८ ॥

अथात् जो पुरुष स्वाभाविक, आकर्षण करनेवाले, इन पाचों इन्द्रियोंके विषयोंमे जीता जाता है उस पुरुषके लिये शुक्लपक्षके चंद्रमाकी समान दुःख बढते हैं ।

फिर कहा है —

" अर्थानामीश्वरा य स्यादिन्द्रियाणामनीश्वर ।
इंद्रियाणामनैश्वर्यादैश्वर्यात् भ्रश्यते हि स " ॥ ५९ ॥

अथात जो मनुष्य धन सम्पत्तियोंका स्वामी हो और इंद्रियोंका स्वामी न हो याने इंद्रियोंके वशीभूत हो तो इंद्रियोंका स्वामी न होनेके कारण वह मनुष्य ऐश्वर्यसे अध पतन पाता है ।

लिखा है —

" य पचाभ्यतरान शत्रूनविजित्य मनोमयान ।
जिगीषति रिपूनन्यान रिपवोऽभिभवंति तम " ॥ ५७ ॥
उद्योग ५३

अथात् जो पुरुष पाचों इन्द्रिरूप शत्रुओंके विना जीते अन्य शत्रुओंके जीतनकी इच्छा करता है वह उन बाहरी शत्रु-

लोंसे तिरस्कार पाता है।

कहा है —

" इन्द्रियाण्येव तत् सर्वं यत् स्वर्गनरकावुभौ।
निगृहीतविसृष्टानि स्वर्गाय नरकाय च " ॥ १९ ॥

अर्थात् इन्द्रियें ही स्वर्ग और नरकमें ले जाती है। क्यों कि इन्द्रियोंका विरोध करके तप करनेसे स्वर्ग मिलता है और इन्द्रियोंके विषयोंमें लिप्त होनेसे नरक मिलता है।

महाभारत वनपर्वमें लिखा है —

" एष योगविधि कृत्स्ना यावदिन्द्रियधारणम्।
एतन्मूल हि तपस कृत्स्नस्य नरकस्य च " ॥ २० ॥

यान—इन्द्रियनिग्रह यह पूर्णयोगकी विधि है। क्या कि तप, स्वर्ग और नरक सबका मूल इन्द्रियें हैं।

इन्द्रियोंके लिये एक श्लोक फिर सुन लीजिए!

" इन्द्रियाणा प्रसगेन दोषमृच्छत्यसशयम्।
सन्नियम्य तु तान्येव तत सिद्धि समाप्नुयात् " ॥२१॥

वनपर्व २२

याने—इन्द्रियोंका प्रसग करनेसे नि सदेह दोष उत्पन्न हो जाते है और इनके निरोधसे परम सिद्धि मिलती है।

७-तप—इच्छाका निरोध करना इसको तप कहते हैं। तपके अनेक भेद हैं। परन्तु प्रधान रूपसे १२ भेद माने गये हैं। ६ प्रकारसे बाह्य तप और ६ प्रकारसे अंतर तप कहा है। अणसण, ऊणोन्दरी, वृत्तिसंक्षेप, रसत्याग, कायक्लेश और सलीनता ये छे ६ भेद बाह्य तपके हैं। प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग ये अभ्यंतर तपके ६ भेद हैं। वास्तवमें देखा जाय तो किसी भी शुभ क्रिया द्वारा, मनको शुभ परिणामोंमें लगाना एवं शारीरिक और मानसिक परिश्रमका आत्महितके लिये करनेका नाम ही तप है। कठिन कर्मोंका नाश तपके सिवा नहीं हो सकता। तीर्थंकर श्रीमन्महावीर स्वामीने भी कठोर (निकाचित) कर्मोंका नाश करनेके लिये तपका आदर किया था। अतएव यथासाध्य तप प्राणी मात्रको करना चाहिये। वर्तमानमें कई मतमतांतर वाले तपके संबंधमें अपना विरुद्ध मत रखते हैं किन्तु यह वे बड़ी भूल करते हैं। देखिये, वैद्यकशास्त्र भी शरीरहितार्थ लंघनादि तप करनेका उपदेश कर रहा है। हाँ, जो देश, काल, सामर्थ्यका विचार न करके अति उग्र तप करते हैं उनको फिर पश्चात्ताप होता है अथवा बीचमें ही भंग होनेका अवसर आ जाता है। इसका कारण यह है

१—किसी समाचारपत्रमें पढ़नेमें आया है कि एक रोगाक्रांत पाश्चिमात्य ने १ बारह लंघन एक साथ किये थे जिससे उसके शरीरमें जितने भयङ्कर रोग थे वे सब बारह दिनों के भीतर आराम हो गये जो किसी दवाईसे भी आराम नहीं होते थे। अतः इस विषयमें अब पाश्चात्य देशोंमें भी चर्चा प्रारंभ हो गई है। और लंघन औषधालय भी खुल गये हैं। अतः लंघनके विरुद्ध आवाज उठानेवाले हमारे आर्यसमाजी भाइयोंने इस ओर अवश्य लक्ष्य देना चाहिए। लेखक।

क वे त्याग तपके रहस्य को नहीं जानते, केवल स्वांग करते हैं इसलिए उनका अनुकूल फल नहीं होता और निन्दा होती है।

८—त्याग,—बाह्य अभ्यंतर उपाधी, शरीर तथा अन्न-वस्त्रादिक आश्रयीभूत भावोंका परित्याग ही सच्चा त्याग है। योगवाशिष्ठमें वशिष्ठ मुनि भी कहते हैं कि—" अन्तत्यागी बहित्यागी अर्थात जिसके अन्तरङ्गमें त्याग हो जाता है उसके बाह्यत्याग स्वयं ही हो जाता है। कई धूर्त उदरभरणार्थ तथा मूर्खतावश मनुष्यों के वञ्चनार्थ बाह्य त्यागी बनकर घूमते हैं, उस वचक त्यागियोंकी संसारमें अधिकता होनेसे परीक्षा करना भी दुस्साध्य हो पड़ा है। तथापि सच्चे त्यागियोंकी संसारमें कमी नहीं है। और परमार्थी एवं तत्वाभिलाषी—मुमुक्षु जन उनकी परीक्षा भी कर सकते हैं।

त्यागी पुरुष संसारको तृणवत् मानता है। आत्माके सिवा अन्यान्य पदार्थ उसे निस्सार प्रतीत होने लग जाते हैं। त्याग ऐसी वस्तु है कि जिससे राजा महाराजा त्यागीके दास हो जाते हैं।

९—अकिञ्चन,—आत्मावलम्बनके अतिरिक्त वस्त्र पात्र और शरीर आदि यावन्मात्र पौद्गलिक पदार्थोंसे ममत्वका अभाव हो जाना ही आकिंचन धर्म है। अर्थात जो कुछ धर्म-रक्षार्थ तथा शरीररक्षार्थ वस्त्र पात्रादि परिग्रह समीप हो उसको भी अपना न समझकर तथापि उसपर ममता न रखना इसका नाम

अकिञ्चन धर्म है। ऐसे तो संसारमें बहुतसे लोग होंगे कि जिनको सांयकालको प्रभातका है तो सध्याका नहीं और सन्ध्याका है तो प्रभातको नहीं और ऐसे भी अनेक दुखिया होंगे कि-जिनके समीप एक वराटिका तक मिलना दुर्लभ है। चाहे न हो, किन्तु उनका मन मूर्च्छा एवं तृष्णामें गहरा डूबा हुआ है। और वे प्राणी अन्न, वस्त्र, धन और सुखके लिये सतत अभिलाषा करते ही रहते हैं एवं तरसते हैं। वे अकिञ्चन-धर्मी कभी नहीं हो सकते। क्यों कि उनके ममत्वका अभाव नहीं हुआ है। अतः सच्चे अकिञ्चन धर्मी वे ही हो सकते हैं कि-जिन्होंने सार संसारके यावन्मात्र धनको तुच्छ समझ लिया है। और केवल आत्मिक विचारोंमें मग्न हैं।

१०---ब्रह्मचर्य---उदारिक तथा वैक्रिय संबंधी मैथुनके त्यागको ब्रह्मचर्य कहते हैं। ब्रह्मचर्यका उपदेश भारतके सारे तत्ववेत्ताओंने किया है। वैद्यकशास्त्र भी ब्रह्मचर्यका पक्षपाती है। ब्रह्मचर्यके पालनमें शारीरिक और मानसिक बलका विकास होता है। विद्याध्ययन, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग, गुरुसुश्रूषा, व्यायाम आदि अनेक कामोंमें ब्रह्मचारी आनन्दके साथ उत्तीर्ण हो सकता है। और व्यभिचारीसे उपरोक्त काम सम्यक् रीत्या नहीं हो सकते। भोगाभिलाषियोंका मन चञ्चल होनेसे मनकी एकाग्रता होना ही दुस्साध्य है। और सिवा मनकी एकाग्रताके किसी भी कार्यकी सिद्धि नहीं हो सकती। अतः इहलोक और परलोकके श्रेयार्थ ब्रह्मचर्यका पालन करना अत्यावश्यक है। शास्त्रकारोंने व्रतपरिपालनार्थ, ज्ञानकी अभिवृद्धिके लिये,

(शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, वस्त्राभूषणादि पदार्थोंसे प्रमत्त न होकर) ब्रह्मचर्यका पालन करना कहा है । व्यायामसे मन और इन्द्रियोंके विकार हटते हैं । इस लिये ब्रह्मचारी को यह शरीरके हितचिंतकोंको व्यायामका व्यसन वैराग्यसाधन भी करता है । वास्तवमें व्यायाम ब्रह्मचर्यके पालनमें सहायकारी होनेसे आदरणीय है । व्रत-नियमोंका पालन शरीर द्वारा होता है । अतः धर्मसाधनार्थ शरीरकी रक्षा करना, उसे रोगी न होने देना, शरीरकी सामर्थ्यको घटने न देना, ये कार्य ब्रह्मचर्य द्वारा सहजमें हो सकते हैं । अतएव सर्वतोभावसे ब्रह्मचर्य आदरणीय है ।

क्या कि विषयभोग कितना भी सेवन किया जाय तो

आयुर्वेदमें [illegible] कहा है कि —

लाघवं कर्मसामर्थ्यं दीप्ताग्निर्मेदस क्षय ।
विभक्तघनगात्रत्वं व्यायामादुपजायते ॥ ”

अर्थात् व्यायाम करनेसे शरीर हलका, काम करनेकी शक्ति, [illegible] की वृद्धि, मेदा कमी और शारीरिक अवयवोंमें मजबूती होती है ।

इसी तरह [illegible] में कहा है —

स्निग्ध वा यदि वा भुक्त शीघ्र विपच्यते ।
भवन्ति शीघ्र नैतस्य देहे शिथिलतादय ॥

अर्थात् व्यायाम करनेसे अच्छीतरह चिकना या रूखा खाया हुआ अन्न पच जाता है । और व्यायाम करनेवालेके शरीरमें शिथिलता आदि चिन्ह शीघ्र नहीं होते हैं । [illegible] ।

मनकी तृप्ति नहीं होती अत इसको जीतना ही अच्छा है ।

एक तत्त्व वेत्ता कहते हैं कि--

" न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते " ॥

तात्पर्य यह है कि--कामकी शांति भोगसे नहीं होती किन्तु घीके डालनेसे जैसे अग्नि अधिकाधिक धधक उठती है तैसे ही विषय भोग--सेवनसे अधिक बढ़ता है । अतएव

" कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा ।
सर्वत्र मैथुनत्यागो ब्रह्मचर्यं तदुच्यते " महेश्वर ।

मन, वचन और शरीरसे निरंतर सभी अवस्थाओंमें सर्वथा मैथुनका त्याग ही ब्रह्मचर्य है ।

उपरोक्त दस १० नियमोंके पालनकर्त्ताकी गणना प्रधान कोटीमें होती है । किन्तु स्त्री, पुत्र, कुटबादि परिवारके माया-जालमें फँसे हुवे प्राणीसे इन नियमोंका पालन नहीं हो सकता । इस लिये गृहस्थियोंके लिये १० नियम कुछ बदलकर कहे गये हैं । उन नियमोंको सम्यक्रीत्या पालन करनेवाला गृहस्थ कालांतरमें प्रधान कोटी तक पहुँच सकता है । इस लिए गृहस्थियोंके लिए पालन करनेके नियमोंकी गणना दूसरी कोटीमें की गई है । अत यहापर गृहस्थियोंके दश नियमोंका सक्षेपत अवलोकन करा देना उचित समझा जाता है । वे नियम ये हैं --

दया दानं दमो देवपूजा भक्तिर्गुरौ क्षमा ।
सत्यं शौचं तपोऽस्तेयं धर्मोऽयं गृहमेधिनाम् ॥ १ ॥

भावार्थ—दया, दान, इन्द्रियदम, देवपूजा, गुरुभक्ति, क्षमा, सत्य, शौच, तप और अचौर्य ये दस नियम गृहस्थियों-के लिये कहे हैं।

इन दश नियमोंमें, इन्द्रियदम, क्षमा, सत्य, शौच, तप इन पांच नियमोंके सम्बन्धमें प्रथम लिखा जा चुका है तथापि गृहस्थियोंके लिये कुछ विशेष कहना आवश्यकीय है।

१—*दया-गृहस्थियोंको, मनसे प्राणी मात्रपर दया रखना चाहिये। किन्तु गृहस्थमें स्थूल दयाका ही पालन हो सकता है। क्यों कि, कृषि, वाणिज्य, पशुओंका पालन पोषन तथा अनेक सांसारिक कार्य होनेसे पृथिवी, आप, तेज, वायु वनस्पति और बेइन्द्रियादि सूक्ष्म जीवोंकी रक्षा करना गृहस्थ के लिये असम्भव है—सामर्थ्यके बाहर है। गृहीके लिये सर्वथा आरम्भका त्याग करना नहीं बन सकता और जहां आरम्भ है

---

* प्रत्येक पद [illegible] त्याग करके [illegible] देखना यह अत्यन्त कठिन है।

रूपम यङ्गतामायुर्बुद्धि सत्वं बल स्मृतिम् ।
प्राप्तुकामैर्नरैर्हिंसा वर्जनीया महात्मभि ॥

(महाभारत अनुशा ० अ ११ श्लोक ८)

अर्थात्—रूप, सुडौलपन, आयु बुद्धि प्राण, बल स्मरणके चाहनेवाले महात्माओंने हिंसाका त्याग किया है और दयाका पालन किया। है लेखक।

वहांपर दोष अवश्य है। श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय १८ श्लोक ४८ में भी लिखा है कि–" सर्वारंभा हि दोषेण " अर्थात् आरंभ मात्र दोष युक्त हैं। अतः गृहस्थ सूक्ष्म दोषोंसे कदापि नहीं बच सकता। परंतु यहांपर कोई यह न समझ ले कि–वे उन जीवोंके नाशसंबंधी दोषोंके पापसे वंचित रहते हैं! नहीं नहीं! पाप तो अवश्य लगताही है किन्तु गृहस्थाश्रममें रहकर उन पापोंसे बचना अशक्य है तथापि परिहार हो सकता है। नियमच्युत प्राणियोंसे नियमानुसार चलनेवाले गृहस्थियोंको बहुत कम पाप लगता है। अतएव जिनकी गृहत्याग करनेकी सामर्थ्य न हो उन धर्माभिलाषी गृहस्थियोंने गृहस्थाश्रममें रहकर भी गृहस्थाश्रमके नियमोंका पालन अवश्य करना चाहिये।

२—दान,–शास्त्रोंमें दान देनेका कारण यह लिखा है कि, जिसके देनेमें, लेनेवालेका और देनेवालेका हित हो। दानके विषयमें अभय, सुपात्र, अनुकम्पा, उचित और कीर्ति इस प्रकार पांच भेद दर्शाये हैं। इन पांच दानोंमें, अभय और सुपात्र ये दो दान तो उच्च कक्षाके हैं। इन दो दानोंके प्रभावसे प्राणी स्वर्ग ही नहीं परन्तु मोक्षतक प्राप्त कर सकता है। अनुकम्पा इस लोकमें सुकीर्ति और परलोकमें स्वर्ग तक देनेवाली होनेसे इसको मध्य कक्षामें माना है। और पूर्वोक्त तीनों दान आदरणीय लिखे हैं। किन्तु शेषके उचित और कीर्ति ये दो दान केवल लौकिक कीर्तिके देनेवाले होनेसे हेय मात्र हैं। वर्तमानमें प्रायः मनुष्य कीर्तिके भूखे ही विशेष दृष्टिगत हो रहे हैं। इस लिये आधेकतर उसके, दो

दान ही विशेष दिये जाते हैं। अमुकने अमुक कार्यके लिये इतना द्रव्य व्यय किया तो मैं उससे इतना अधिक व्यय करूं तभी मैं सच्चा दानी ! इस प्रकार मानके भूखे ही अविचारसे अधिकतर शेषके दा दान किया करते हैं। परन्तु विचारशील इस प्रकार कभी नहीं करते। पात्रापात्रका विचार करके जो दान दिया जाता है वही दान उत्तम फलका देनेवाला हो सकता है। अतएव दानियोंको कुत्सित् दानोंको त्यागकर एवं सत्पात्रों-को दान देकर अपने द्रव्यका सद्व्यय करना चाहिये ताकि वह लौकिक और लोकोत्तरमें काम आवे।

३—इन्द्रियदम-इस नियमके सबंधमें हम प्रथम लिख आये हैं तथापि गृहस्थियोंके लिये इतना विशेष भेद है कि—वहांपर जो पांचों इन्द्रियोंके विषयमें सर्वथा निषेध एवं त्याग है और यहांपर कुछ २ छूट दी गई है। जैसे —सर्वथा त्यागियोंके लिये स्त्रीसंग-का सर्वथा त्याग है किन्तु गृहस्थियोंके लिये अपनी स्त्रीके सिवा शेष यावन्मात्र स्त्री पुरुष-नपुंसकादिकसे काम चेष्टा करनेकी मना है। इसी प्रकार पांचों इन्द्रियोंके सबंधमें यति और गृही-के लिये भेद समझ लेना चाहिये। गृहस्थियोंने इन्द्रियोंके लालुपी न होकर गृहस्थ धर्मानुसार इन्द्रियोंके इन विषयोंको शनै २ त्यागनेका प्रयत्न अवश्य करते रहना, इसीको गृहीजनोंके लिये इन्द्रियदमन कहा है।

४ देवपूजा —गृहस्थियोंके लिये नित्य देवपूजन करना कहा है। वीतराग देवकी प्रतिमाका द्रव्य और भावसे पूजन करनेसे मिथ्यात्वका नाश और सम्यक्त्व दृढ होता है मोक्ष

प्राप्तिका कारण है । मूर्ति-पूजाके सम्बन्धमें सम्प्रति यत्र-तत्र में झगड़े खड़े हुये हैं किन्तु मुँहतोड़ उत्तर मिलते रहनेसे मूर्ति-निन्दकोंका पक्ष अब निर्बल होता चला जा रहा है । यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि मूर्ति-पूजा धर्म अनादि कालसे प्रचलित है । और द्रव्य पूजा यह गृहस्थियोंके लिये प्रधान धर्मानुष्ठान है । प्रतिमा एक ध्येय वस्तु है । आत्मतत्वको जाननेके लिये तीर्थंकर सर्वज्ञोंके वचन आदर्श के समान हैं । उन महात्माओंके अभावमें उन्हींके वचनानुसार उनकी मूर्तिका दर्शन और पूजन द्वारा उनके सच्चरित्रोंका चिंतवन, आत्मतत्वाभिलाषियोंके लिये धर्मप्राप्तिका प्रथम सोपान है । इस विषयमें अधिक देखना-की जिसकी इच्छा हो वह मेरी रचित " जैनसूत्रोंमें मूर्तिपूजा नामक पुस्तकको देखें । अथवा और २ भी इस विषयके विद्वानोंद्वारा लिखित अनेक ग्रंथ छपे हैं वे देखें । यहां पर केवल इतना ही लिखना पर्याप्त है कि गृहस्थियोंके लिये मूर्ति-पूजा उपकारिणी अवश्य है ।

५—गुरुभक्ति—जीवोंको संसारसे तारनेको केवल त्यागी गुरु ही समर्थ हैं । उनकी भक्ति करना श्रमणोपासकका परम कर्त्तव्य है । संसारमें गुरुके समान और कोई हितैषी नहीं है । परलोकका सच्चा मार्ग बतलानेमें गुरुके समान और कोई भी सामर्थ्य नहीं रख सकता । अतः अन्न, वस्त्र पात्र, स्थान, अथवा शरीर, वाग मन द्वारा जो कुछ बननेमें आ सके उसी प्रकारसे वांछारहित शुद्धिसे गुरुकी सेवा-सुश्रूषा करना कल्याणकारी है । वर्तमानमें प्रायः जनसमाज यत्र,

तत्र, धन-सम्पत्ति आदि लौकिक कार्योंके साधनार्थ गुरुभक्ति करते है, वे उसके असली फलसे वञ्चित रह जाते हैं। अर्थात् वे स्वार्थपरतावश परमार्थका एव पारलौकिक सुखों- को तिलाञ्जलि दे बैठते हैं। अतएव गुरुभक्ति नि स्वार्थ बुद्धि द्वारा उत्तम प्रकारसे करना मगलप्रद है।

६-क्षमा—इस विषयके सबधम हम प्रथम यत्याके नियमोंमें लिख भी आये हैं। किन्तु गृहस्थियोंसे इतनी विशुद्ध- तर क्षमाका पालन होना दुस्साध्य है। तथापि, स्त्री, बाल, वृद्ध, दास, पशु आदि कुटुब तथा सहचारियोंसे क्षमायुक्त व्यवहार करना, क्रोधको घटानेका प्रयत्न करना गृहस्थियोंके लिये उचित कार्य है। क्रोधका समूल नाश करनेका प्रयत्न करना ही अच्छा है। अत क्षमा क्या गृही और क्या यति सभीके लिये आचरणीय है।

७-सत्य—इस विषयमें भी प्रथम लिखा जा चुका है। किन्तु गृहस्थियोंसे सत्यव्रत मुनियोंके समान विशुद्धतर साध्य नहीं हो सकता। मुनि त्यागी होनेसे एव सर्वज्ञप्रणीत सच्छास्त्रों के दृढ अभ्यासी होनेसे असत्य सदाके लिये उनसे दूर चला जाता है। और गृही सासारिक कार्योंमें बद्ध होनेसे केवल स्थूल असत्य वचनका त्याग यद्यपि कर सकता है, तथापि सूक्ष्म असत्यका दोष किसी न किसी कारणवशत्व लगे बिना नहीं रह सकता। अर्थात् गृही सासारिक प्रपञ्चोंमें लिप्त होनेसे किसी न किसी समय, ज्ञात दशामें तथा अज्ञात दशा में, सूक्ष्म मिथ्याभाषणका दोष लग ही जाता है। यद्यपि

गृहीको मिथ्या भाषणका दोष अवश्य लगता है। किन्तु जो लोग सदैव जानबूझकर झूठ बोलते हैं उनसे किसी कारण-वश लाचारीसे झूठ बोलनेवालेको दोष कुछ कम अवश्य लगता है। तथापि इतनी बात अवश्य याद रखना चाहिये कि जो कार्य जितना दूषित होगा उसको करनेसे उतना ही दोष अवश्य लगेगा। अतएव गृहस्थियोंको भी यथासाध्य मिथ्या भाषणसे बचनेके लिये सावधानी रखनी चाहिये।

८-शौच—इस विषयमें भी प्रथम बहुत कुछ लिखा जा चुका है। किन्तु वहांपर भावशौच एवं अलोभसे आत्म-शुद्धि करनेका दर्शाया है और यहांपर यह दर्शाना है कि भाव-शुद्धिके लिये एवं लोभको घटानेके लिये परिग्रह-परिमाणके साथ, शरीरशुद्धिके निमित्त शरीर, वस्त्र, गृह-पात्र आदि पदार्थोंको पवित्र रखना भी गृहस्थके लिये अवश्य है। कई मत मतांतरवाले जल, मृत्तिका द्वारा शरीर, वस्त्र-पात्रादिको पवित्र रखनेमें ही केवल शौच शब्दका उपयोग करते हैं। किन्तु अंतरशुद्धिके बिना बाह्यशुद्धि निरर्थक है। इसलिये अंतर्शुद्धि होना लाभप्रद है। यहांपर केवल कहना इतना ही है कि मन मलीन न होने पावे इस लिये तृष्णाको बढ़ने न देनेके लिये परिग्रह पर रखना यह आत्म (भाव) शौच रखनेका प्रयत्न है। " अन्तर्शुद्धि बहिर्शुद्धि " अर्थात् अन्तरंग शुद्ध हो जाने पर बाह्य शुद्धिका विवेक स्वयं हो जाता है। गृहीके लिये शरीर वस्त्र-पात्र गृह आदिकी शुद्धिके निमित जितने जलकी आवश्यकता हो उतना जल अवश्य उपयोग में लेना

चाहिये । किन्तु निरर्थक तथा बिना कारण जलका ढोलना युक्ति विकल है । शौचके निमित्त जितने जलकी आवश्यकता है उतना जल काममें नहीं लेते हैं उनकी जितनी भूल है उतनी ही भूल उनकी है कि जो नेफायदा (निरर्थ) जलको ढोलते हैं ।

९—तप—इस विषयमें भी प्रथम लिखा जा चुका है। यहांपर इतना कहना ही बस है कि यथा शक्त्यनुसार मुनि और गृही दोनोंने तप अवश्य करना चाहिये ।

१०—अस्तेय—इस नियमको पालन करनेमें गृहस्थियों को खूब सावधानी रखनी चाहिये । स्तेयका अर्थ चोरी है । और अस्तेयका अर्थ अचौर्य अर्थात् दूसरेका धन माल मन्जूर दीला तथा बलात् अपना न करना है । इस विषयमें संसार मात्र परिचित होनेसे विशेष वक्तव्यकी आवश्यकता नहीं है। परन्तु गृहस्थियोंको राज्यनियमोंके विरुद्ध एवं धर्मनियमोंके विरुद्ध तथा व्यापारमें न्यूनाधिक्य लेने देनेमें जो चोरीका दोष लगता है वह न लगने पावे इस बातकी सावधानी पूरी २

---

१ अस्तेयका अर्थ है ' अस्तेयं परद्रव्यापहार । अदत्तानुपादान वा ' । अर्थात् किसी दूसरेकी वस्तुका हरण न करना बिना दी हुई वस्तुका न लेना है । और स्तेयका अर्थ है —

" उपायैर्विविधैरेषां छलयित्वापकर्षणम् ।
सुप्तमत्तप्रमत्तेभ्य स्तेयमाहुर्मनीषिणः ॥

अर्थात् विविध उपायोंसे सोते हुएसे तथा नशेमें अथवा किसी भी कारणसे उन्मत्त हो उसको छलकर उसके धनका अपहरण करना अर्थात् लेलेना इसको चोरी अथवा स्तेय कहते है । लेखक ।

रखनी चाहिये। हमें दुःखके साथ कहना पडता है कि इस विषयका विचार वर्तमानके व्यापारियोंमेंसे बहुत कम लोग करते होंगे। लेन देनमें, न्यूनाधिक्य करने एवं देन-लेनको ही कितनोंने व्यापार समझ रक्खा है। इस कुत्सित व्यापार से विचारवानोंने अवश्य बचना चाहिये।

उपरोक्त दश नियम (धर्म) उच्च कोटीके गृहस्थियोंके लिये हैं। इन नियमोंका पालन करता हुआ गृही उत्तरोत्तर महात्माओंके उत्तम धर्मों तक पहुच सकता है।

श्राद्ध-विधि, धर्मबिन्दु, श्राद्धदिनकृत्य, आचारदिनकर आदि ग्रथोंमें गृहस्थियोंके लिये, प्रातिदिनके कृत्य, रात्रिकृत्य, मासकृत्य, वर्षकृत्य, जन्मकृत्य और अन्तिमकृत्य आदि अनेक विषय कहे हे। किन्तु स्थानाभाववश हम उन्हें यहा नहीं दे सकते अत जिज्ञासु सज्जन उन ग्रथोंमे ही देख सकते हैं।

धर्म-प्राप्तिका चतुर्थ अग-सयम पालनमें शक्तिका फोरना एव शक्तिका पूर्ण उपयोग करना जो कहा इसके लिये सयमके भेदोंमें दशविध यतिधर्म और दशविध गृही धर्मका अवलोकन करवाना पड़ा। यदि इस प्रकार भेद नहीं अवलोकन कराये जाते तो सयमके लक्षण समझनेमे थोडी कठिनाई अवश्य पडती। अत उपरोक्त भेदोंसे धर्मप्राप्तिका चतुर्थ अग सहज समझमें आसकता है।

धर्मप्राप्ति एव मोक्षप्राप्तिके लिये जो चार अग दुर्लभ कहे हैं,

उनका सक्षेपत वर्णन ऊपर हो चुका है। १–मनुष्यभवका मिलना, २–सद्धर्मोका श्रवण करना, ३–शुद्ध श्रद्धानका मिलना और ४–सयमका उत्तम रीत्या पालन करना एव सयमम वीर्यका फोरना ये चार पदार्थ ससारमें मिलने दुर्लभ हैं। इन पदार्थोके मिलने ही से प्राणी पूर्ण धर्मी बनकर, अव्यय पद प्राप्त कर सकता है। अर्थात् मोक्षप्राप्तिके लिये चार दुर्लभ पदार्थ प्रधान हैं। इन चारोंके विना मुक्ति नहीं मिल सकती। मनुष्यभव पाकर भी शेष तीन पदार्थोके प्राप्ति करनेका प्रयत्न नहीं करते हैं वे मिले हुए मानवभवको भी व्यर्थ खो बैठते हैं। अत जिज्ञासु एव मुमुक्षुजनोंने शेष तीन दुर्लभ अर्गोको प्राप्तकर मानवभवको सार्थक कर लेना चाहिये अत मे—

उपसहार—

मै थोडासा फिर कुछ कहकर विश्रांति लूगा, इस लिये मेरे कहने पर पाठक अवश्य विचार करें —

यारे मित्र!

यदि अधिक उत्तम न भी आवे तो प्राणी मात्रपर मित्र भाव, गुणाधिक पुरुषोंमें प्रमोद, दुखियापर करुणा और अशि क्षित एव दुष्ट परिणामी जीवोपर उदासीनता अर्थात् मध्यस्थ भाव रखकर बर्ताव करना चाहिये। इस प्रकार व्यवहार करनेमें कल्याण हो सकता है।

ससार दुखोका भडार है। सासारिक जीवमात्र दुखी

है। किसीको कुछ और किसीको कुछ दुःख अवश्य है। किन्तु विचारवान पुरुषोंको दुःख एक प्रकारसे लाभप्रद है। वे दुःखानुभव द्वारा संसारसागरसे उत्तीर्ण होनेकी सामग्री संचय कर लेते हैं।

श्रीमान उमास्वाति वाचक कहते हैं —

सम्यक्दर्शनशुद्धं यो ज्ञानं विरतिमेव चाप्नोति।
दुःखनिमित्तमपीदं तेन सुलब्धं भवति जन्म ॥ १ ॥

भावार्थ —यह मनुष्यभव दुःखनिमित्तक होनेपर भी जो सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्रको प्राप्त करता है उसको मनुष्यभव अच्छा मिला कहना चाहिये। अर्थात् उसीको यह लाभप्रद है, अन्यको नहीं। अतएव मानव प्राणीको दुःखोंसे उत्तीर्ण होनेके लिये उक्त त्रिपुटीकी आराधना करनी चाहिये।

मित्रो! यह शरीर क्षणभंगुर है। घड़ी भरका इसका भरोसा नहीं है। धन दौलत और कुटुम्ब-परिवार आदि कोई साथ चलनेवाला नहीं है। इनका अप्रशस्त मोह करना वृथा है। क्यों कि "धरेही रहेंगे धराधूरमाहि गाड़े धन, भरेही रहेंगे भंडार बहु पानीके, जुरेही रहेंगे गजराज मो जंजीरनमें, अरेही रहेंगे अश्व मानो पथ पानीके, आवेगो काल तब करेगो सहाय कौन, ठेरही रहेंगे योद्धा जग मरदानीके, याकी सुख जानी माया हा गई बिरानी तब छोड़ राजधानी वासी व्हे गये मसानीके ॥ १ ॥

उनका सक्षिप्त वर्णन ऊपर हो चुका है। १-मनुष्यभवका मिलना, २-सद्धर्मका श्रवण करना, ३-शुद्ध श्रद्धानका मिलना और ४-सयमका उत्तम रीत्या पालन करना एव सयमम वीर्यका फोरना ये चार पदार्थ जगतमें मिलने दुर्लभ हैं। इन पदार्थोंके मिलने ही से प्राणी पूर्ण धर्मी बनकर, अव्यय पद प्राप्त कर सकता है। अथात मोक्षप्राप्तिके लिये चार दुर्लभ पदार्थ प्रधान हैं। इन चारोंके बिना मुक्ति नहीं मिल सकती। मनुष्यभव पाकर भी शेष तीन पदार्थोंके प्राप्ति करनेका प्रयत्न नहीं करते हैं वे मिले हुए मानवभवको भी व्यर्थ खो बैठते हैं। अत जिज्ञासु एव मुमुक्षुजनोंको शेष तीन दुर्लभ अंगोंको प्राप्तकर मानवभवको सार्थक कर लेना चाहिये अब मैं—

उपसहार—

मैं थोड़ासा फिर कुछ कहकर विश्रांति लूंगा, इस लिये मेरे कहने पर पाठक अवश्य विचार करें—

प्यारे मित्रो!

यदि अधिक न बने तो प्राणी मात्रपर मित्र भाव, गुणाधिक पुरुषोंमें प्रमोद, दुखियोंपर करुणा और अविक्षित एव दुष्ट परिणामी जीवोंपर उदासीनता अर्थात् माध्यस्थ भाव रखकर बर्ताव करना चाहिये। इस प्रकार व्यवहार करनेसे कल्याण हो सकता है।

ससार दुःखोंका भडार है। सासारिक जीवमात्र दुःखी

हैं। किसीको कुछ और किसीको कुछ दुःख अवश्य है। किन्तु विचारवान् पुरुषोंको दुःख एक प्रकारसे लाभप्रद है। वे दुःखानुभव द्वारा संसारसागरसे उत्तीर्ण होनेकी सामग्री संचय कर लेते हैं।

श्रीमान् उमास्वाति वाचक कहते हैं —

सम्यक्दर्शनशुद्धं यो ज्ञानं विरतिमेव प्राप्नोति ।
दुःखनिमित्तमपीदं तेन सुलब्धं भवति जन्म ॥ १ ॥

भावार्थ —यह मनुष्यभव दुःखनिमित्तक होनेपर भी जो सम्यक्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्विरतिको प्राप्त करता है उसको मनुष्यभव अच्छा मिला कहना चाहिये। अर्थात् उसीको यह लाभप्रद है, अन्यको नहीं। अतएव मानव प्राणीने दुःखोंसे उत्तीर्ण होनेके लिये उक्त त्रिपुटीकी आराधना करनी चाहिये।

मित्रो ! यह शरीर क्षणभंगुर है। घटी भरका इसका भरोसा नहीं है। धन दौलत और कुटुंब-परिवार आदि कोई साथ चलनेवाला नहीं है। इनका अप्रशस्त मोह करना वृथा है। क्यों कि "धरेही रहेंगे धराधूरमाहि गाढे धन, भरेही रहेंगे भंडार बहु पानीके, जुरेही रहेंगे गजराज मौ जंजीरनसे, अरेही रहेंगे अश्व मानो पथ पानीके, आवेगो काल तब करेगो सहाय कौन, ठरेही रहेंगे योद्धा जग मरदानीके, याकी सुख बानी माया हो गई विरानी तब छोड राजधानी वासी व्है गये मसानीके ॥ १ ॥

है? कौन तारनेवाला है ? इन प्रश्नोंका निरंतर विचार करना चाहिये।

मैं कौन हूँ ? इस प्रश्नका विचार इस प्रकार करना चाहिये कि मैं जीवात्मा हूँ, ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूप रत्नत्रय-सहित शुद्ध चैतन्य हूँ किन्तु पुद्गलके समागमसे मेरेको जन्म मरणादि दुःखोंको सहन करना पड़ता है। उनका संग ही दुःखों का कारण है।

कहांसे आया हूँ ? इसका विचार इस प्रकार करना चाहिए कि कुछ प्रमादके दूर होने ही से मैंने मानवभव पाया है। इसके प्राप्त करनेमें मेरेको बड़ा ही पराक्रम एवं प्रयत्न करना पड़ा था। बिना प्रयत्नके मुक्तिके प्रथम सोपान मानवभवका पाना कहांसे हो सकता है ? अतः जिन कार्योंके करनेसे यह मानवभव मिला है, वे कार्य कौनसे हैं ? इसकी तलाश करके उन्हींका अवलम्बन करना चाहिये।

कौन मेरा मित्र है और कौन मेरा शत्रु है ? इसका विचार इस प्रकार करना चाहिये कि आत्माके जो मूलगुण हैं वही मेरे सच्चे मित्र हैं। बिना उनके संसारमें कोई किसीका मित्र नहीं है। और आत्माका शत्रु परवस्तुमें स्नेह करना है। पुद्गलके मोहमें ही आत्मा अपने रूपको भूला हुआ है।

कहांपर जाना है ? इसका इस प्रकार समाधान करना चाहिये कि—आत्माके लिये अन्तिम साध्य मुक्ति है। वहांपर

पहुच जानेसे फिर वहाँपर भी जाना आना शेष नहीं रहता पुद्गलका अत्यन्त अभाव हो जानेसे आत्मा अन्यय हो जाता है। अत पुद्गलका सग सम्बन्ध लिये छूट जाय ऐसा प्रयत्न करना चाहिये।

कौन तारनेवाला है ? इस प्रश्नका निराकरण इस प्रकार करना चाहिये कि---आत्मिक गुणोंके प्रकाश होनेमें निमित्त कारण सर्वज्ञप्रणीत सत्शास्त्र हैं जिन शास्त्रोंकी असन्दिग्ध रचना आत्मतत्त्ववेत्ताओंने की है। उन्होंने जिस मार्गका अवलम्बन किया था उसी मार्गपर चलनेका उपदेश वे उन सत्शास्त्रोंमें कर गये हैं। अत उन्हींका यह उपदेश हमें तारनेवाला है। उन शास्त्रोंके श्रवण–मनन–चिन्तवन–निदिध्यासनसे ही आत्माका अभ्युदय है। इस प्रकार आलोचना प्रत्यालोचना करनेसे आत्मस्वरूपका प्रकाश शनै शनै स्वय होने लगता है। उपरोक्त प्रश्नोंको समझनेका प्रयत्न यदि आत्मिक तत्ववेत्ताओंके समीपसे किया जाय तो अधिक लाभदायक है। ऐसा सयोग न मिले तो स्वय भी। इस प्रकार चिंतवन करते रहनेसे सुखप्राप्तिकी सामग्री मिलनेमें कठिनाई नहीं होती। जैसे –लोहचुम्बक अपनी शक्ति द्वारा लोहको खींचकर समीप ले लेता है तद्वत उपरोक्त रीत्या चिन्तवनसे सुख खींचा हुआ चला आता है। इस लिये प्यारे मित्रो !

जलान्तश्चन्द्रचपलं जीवितं खलु देहिनाम् ।
तथाविधमिति ज्ञात्वा शश्वत्कल्याणमाचरेत् ॥ १ ॥

देहधारियोंका जीवन निश्चय करके पानीके भीतर चद्रमाके बिम्बके समान चञ्चल है इस प्रकार इसको जानकर सर्वदा कल्याणकारी आचरण करना चाहिये । इतिशम् ।

खामगाँव } विनीत,
(बरार) } बालचन्द्राचार्य ।

पहुंच जानेसे फिर वहाँपर भी जाना आना शेष नहीं रहता। पुद्गलका अत्यन्त अभाव हो जानेसे आत्मा अव्यय हो जाता है। अतः पुद्गलका संग जैसेभी छूट जाय ऐसा प्रयत्न करना चाहिये।

कौन तारनेवाला है ? इस प्रश्नका निराकरण इस प्रकार करना चाहिये कि---आत्मिक गुणोंके प्रकाश होनेमें निमित्त कारण सर्वज्ञप्रणीत सत्शास्त्र हैं जिन शास्त्रोंकी असंदिग्ध रचना श्रीमत्तत्त्ववेत्ताओंने की है। उन्होंने जिस मार्गका अवलम्बन किया था उसी मार्गपर चलनेका उपदेश वे उन सत्शास्त्रोंमें कर गये हैं। अतः उन्होंका वह उपदेश हम तारनेवाला है। उन शास्त्रोंके श्रवण-मनन-चिन्तन-निदिध्यासनसे ही आत्माका अभ्युदय है। इस प्रकार आलोचना प्रत्यालोचना करनेसे आत्मस्वरूपका प्रकाश अपने आप स्वयं होने लगता है। उपरोक्त प्रश्नोंको समझनेका प्रयत्न यदि आत्मिक तत्त्ववेत्ताओंके समीपसे किया जाय तो अधिक लाभदायक है। ऐसा संयोग न मिले तो स्वयं भी इस प्रकार चिंतवन करते रहनेसे सत्यप्राप्तिकी सामग्री मिलनेमें कठिनाई नहीं होती। जैसे--लोहचुम्बक अपनी शक्ति द्वारा लोहको खींचकर समीप ले लेता है तद्वत उपरोक्त रीत्या चिन्तवनसे सुख खींचा हुआ चला आता है। इस लिये प्यारे मित्रो !

जगन्तरङ्गद्रवपत्र जीवितं खलु देहिनाम्।
तथापि विभिनि ज्ञात्वा श्रेयस्कल्याणमाचरेत् ॥ १ ॥

जैन-शिक्षा

चौथा भाग।

सुसेव स्वरूपं यस्य, वेलाचलकुलायते ।
अपारा संसृतम्भै, जिनबोधपयोधये ॥ १ ॥

पहिला पाठ।

संसार अनादि अनन्त स्थिर है।

१ यह संसार अनादि और अनन्त है। इसका कर्त्ता इसको बनाने और नाश करने वाला कोई नहीं है। द्रव्यार्थिक नय से यह नित्य और पर्यायार्थिक नय से (पर्यायों के बदलने से) अनित्य है।

२ प्रत्येक कालचक्र के दो विभाग होते हैं। १ उत्सर्पिणी और २ अवसर्पिणी।

३ उत्सर्पिणी काल उसको कहते हैं, जिसमें आयुष्य, बल और शरीर आदि प्रत्येक वस्तु की, प्रतिदिन वृद्धि होती जाय। इसके छह आरे (हिस्से) हैं। १ दुषमदुषम, २ दुषम, ३ दुषमसुषम, ४ सुषमदुषम, ५ सुषम, और ६ सुषमसुषम।

श्रीवर्द्धमान जैन-श्वेताम्बर स्वाध्याय ......

मय होगाता .... होता है ।) न्यूनता होती

.... सुषम दुःषम, ४ दुःषमसुषम ५ दुःषम और ६ दुःषम दुःषम ।

...... प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल में धर्म के ...... कथन करने वाले चौवीस तीर्थङ्कर, तीसरे और चौथे आरे में होते हैं ।

६ उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी इन दोनों का एक काल चक्र बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम का होता है । ऐसे कालचक्र अनन्त होगये और अनन्त होंगे । उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल का परिवर्तन पाँच भरत और पाँच ऐरावत इन दस क्षेत्रों में होता है । पाँच महाविदेह क्षेत्रों में तो चतुर्थकाल के माफिक शरीर बलादि हमेशा एक से रहते हैं ।

७ ईश्वर को जगत का कर्त्ता मानना ठीक नहीं है । क्योंकि संसार के जीवों में सुख दुःख पाया जाता है । यदि ईश्वर इन जीवों को बनावे तो रागी द्वेषी होने का प्रसङ्ग आवेगा । ईश्वर तो वीतराग ही होता है ।

८ ईश्वर की भक्ति में पुण्यबन्ध और मुक्ति की प्राप्ति होती है, निमित्त कारण होने से ।

९ तीर्थङ्करों की ...... नहीं हो सकती है । क्योंकि ...... नहीं हो सकता ।

प्रश्न ।

१ जगत् का कर्ता कोई है या नहीं ?
२ कालचक्र के कितने विभाग हैं ?
३ उत्सर्पिणी काल किसे कहते हैं ? और इसके आरे कौन कौन होते हैं ?
४ अवसर्पिणी काल किसे कहते हैं ? और इसके छह आरों के नाम बताओ ?
५ सच्चे धर्म का कथन करने वाले तीर्थंकर कितने और कब होते हैं ?
६ अब तक कितने कालचक्र हो गये और कितने होंगे ?
७ ईश्वर जगत् का कर्ता नहीं हो सकता इस का कारण क्या है ?
८ ईश्वर की पूजा भक्ति करने का कारण क्या है ?
९ तीर्थंकर की भक्ति कैसे (किसके द्वारा) हो सकती है ?

दूसरा पाठ ।

पृथ्वी कैसी है ?

१. यह पृथ्वी शिला के आकार सपाट (चपटा) है, गेंद के माफिक गोल नहीं ।

२ यह पृथ्वी स्थिर है, सूर्य और चन्द्र के विमान इसके ऊपर मेरु पर्वत के इर्द गिर्द घूमते हैं । रात दिन होने का यही कारण है ।

प्रश्न ।

१ ऊर्ध्व लोक में क्या है ?
२ ज्योतिषी मण्डल के ऊपर क्या है ?
३ सिद्धशिला कहाँ है ?

चौथा पाठ।

पृथ्वी के अन्दर क्या है ?

१ इस रत्नप्रभा पृथ्वी में पहली नरक भूमि के आंतरा में आठ व्यन्तरिक, आठ वाणव्यन्तर, दस भवनपति और पहले नरक के जीवों के स्थान हैं, जिन में वे देव और नारकी जीव अपने अपने स्थानों में निवास करते हैं।

२ पहली पृथ्वी के नीचे दूसरी छह पृथ्वियाँ हैं। उनमें छ नरकों के जीव जुदे जुदे अपने अपने स्थान पर निवास करते हैं। सब मिला कर सात नरक हैं।

प्रश्न ।

१ व्यन्तर, वाणव्यन्तर तथा भवनपति देवों के स्थान कहाँ है ?
२ नरक लोक कहाँ है ?
३ अलोक कहाँ है ?

पाँचवाँ पाठ।

संसार में क्या २ पदार्थ है ?

१ इस जगत् के अन्दर मुख्य दो पदार्थ हैं— १ जीव और

२ अजीव। जीव उसे कहते हैं जिसमें चैतन्यशक्ति पाई जाय। अजीव उसे कहते हैं जिसमें चैतन्य शक्ति न हो।

२ जीव दो प्रकार के होते हैं १मुक्त और २ससारी। जो अष्ट-कर्मों के बन्धन से रहित हो कर मोक्ष को प्राप्त हुए हों वे मुक्त कहलाते हैं और अष्ट कर्मों के बन्धन से जो जन्म मरण द्वारा सुख दुःख भोगते हैं वे ससारी हैं।

३ ससारी जीव दो प्रकार के होते हैं—१ त्रस और २ स्थावर। त्रस उनको कहते हैं जो हिलते चलते हैं, स्थावर उनको कहते हैं जो स्थिर रहते हैं।

४ पृथ्वी, अप्, तेज, वायु और वनस्पति ये पाच स्थावर कहे जाते हैं और ये ही एकेन्द्रिय कहाते हैं। इनके स्पर्श इन्द्रिय ही होती है। त्रस जीव दो, तीन, चार और पाच इन्द्रिय वाले होते हैं इसीलिये इनको द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय कहते हैं। जैसे —

५ एक स्पर्शन, दूसरी रसना (जिह्वा) वाले द्वीन्द्रिय और घ्राण (नासिका) के बढ़ने से त्रीन्द्रिय और चक्षु (आँख) के बढ़ने से चतुरिन्द्रिय और श्रोत्रेन्द्रिय (कान) के बढ़ने से पञ्चेन्द्रिय कहे जाते हैं।

६ पाँच स्थावर और एक त्रस यही षट्काय कहे जाते हैं।

प्रश्न।

१ इस जगत् में क्या क्या पदार्थ हैं?
२ जीव [illegible]र के होते हैं?

जैनों मे तीन फिर्के है —१ श्वेताम्बर, २ दिगम्बर और ३ स्थानकवासी। मुसलमानों के दो भेद हे —१ सीया और २ सुन्नी। इसाइयों के दो भेद हैं - १ रोमनकेथलिक और २ प्राटेसटेन्ट। आर्यसमाज के दो भेद हे —१ मासपार्टी और २ घासपार्टी। और हिन्दुओं में भी शैव, वैष्णव आदि अनेक फिर्के है।

प्रश्न।

१ धर्म किसे कहते है?
२ धर्म कितने प्रकार का है?
३ अधर्म किसे कहते हैं?

नौवाँ पाठ।

मोक्षमार्ग।

१ सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र ये तीनों मिल कर मोक्ष के मार्ग (उपाय) हैं, इनको रत्न त्रय भी कहते हैं।

२ 'तत्त्वश्रद्धानं सम्यक्त्वम्'' अर्थात् सच्चे तत्त्वों के ऊपर श्रद्धा हो उसको सम्यक्त्व कहते हैं।

३. सम्यक् दर्शन यानी सुदेव सुगुरु, सुधर्म के ऊपर श्रद्धा यानी प्रतीति हो। इससे विपरीति को मिथ्या दर्शन (मत) कहते हैं।

४ सम्यक ज्ञान यानी जीव अजीवादि नव तत्त्व तथा षट् द्रव्य वस्तुओं को नय निक्षेप अनेकान्त (स्याद्वाद शैली)-

सापेक्ष नित्यानित्य जानना। इसके विपरीत एकान्त यानी स्याद्वाद अपेक्षा रहित जानने को मिथ्या ज्ञान कहते हैं।

५ सम्यक् चारित्र दो प्रकार का है। १ देशविरति और २ सर्वविरति। देशविरति यानी सम्यक्त्व मूल बारह व्रत, इन्हें धारण करने वाला श्रावक कहाता है। सर्वविरति यानी पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्ति वगैरह धारण करने वाला साधु (मुनि) कहाता है। इसके विपरीत अज्ञान (मिथ्या) क्रिया को कुचारित्र कहते हैं।

६ मिथ्या ज्ञान, मिथ्या दर्शन और मिथ्या चारित्र ये मोक्ष के हेतु नहीं हैं, किन्तु भवभ्रमण के हेतु हैं।

प्रश्न।

१ रत्नत्रय किन्हें कहते हैं?
२ सम्यक्त्व किसको कहते हैं?
३ सम्यक्दर्शन का कथन करो?
४ सम्यक् ज्ञान का कथन करो?
५ सम्यक् चारित्र का कथन करो?
६ संसार में भवभ्रमण कराने वाले कौन हैं?

—— o ——

दसवाँ पाठ।

मोक्ष में क्या है?

१ आत्मिक सुख सांसारिक सुख से अनन्तगुण अधिक है अर्थात् अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त चारित्र और

नन्त वीर्य इस अनन्त चतुष्टय से युक्त ज्योतीन्द्र सिद्धात्मा सिद्धशिला के ऊपर विराजमान हैं।

जो जीव कर्मों से रहित हो कर मोक्ष को जाते हैं वे ही इस प्रकार ज्योति स्वरूप हो जाते हैं।

ग्यारहवाँ पाठ।

जीव मोक्ष से फिर नहीं आता।

बहुत से लोग कहते हैं कि मोक्ष में जा कर जीव फिर लौट आता है। उनका यह कथन ठीक नहीं। क्योंकि मोक्ष सम्पूर्ण कर्मों के सर्वथा नाश होने से होता है। जब संसार में लाने वाले कर्म ही न रहे तो फिर किस कारण से जीव मुक्ति से वापिस आ सकेगा।

प्रश्न—यदि मोक्ष से जीव वापिस नहीं आता तब तो किसी दिन यह जगत् संसारी जीवों से खाली हो जायगा?

उत्तर—संसार में जीव अनन्त हैं इस लिये कितने ही जीवों का मोक्ष हो जाय तो भी संसार जीवों से खाली नहीं हो सकता। अनन्त उन्हीं का नाम है जिनका कदापि अन्त न हो सके।

बारहवाँ पाठ।

जैन धर्म को कौन पाल सकता है?

१ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों ही वर्ण जैन ध

को पाल सकते हैं। केवल वैश्यों का ही, जो लोग इस धर्म को समझते हैं वे भूल करते हैं। जैन धर्म के नेता जो चौबीस तीर्थंकर हुए हैं वे क्षत्रिय कुल में हुए हैं। गौतम स्वामी आदि गणधर तथा कई आचार्य भी ब्राह्मण कुल में हो गये हैं। इस वक्त वैश्य लोग अपनी जाति को ही जैन धर्म मान बैठे हैं सो ठीक नहीं है।

२ इस सर्वज्ञ कथित स्याद्वाद निर्मल धर्म को मनुष्य मात्र ही क्या किन्तु पशु पक्षी भी धारण कर सकते हैं। यह बात प्रमाण भूत शास्त्रों से स्पष्ट ज़ाहिर है। जैन धर्म पालक जितने वैश्य जाति के हैं वे एक साथ भोजनादि सर्व व्यवहार सम्बन्ध करलें तो भी शास्त्र विरुद्ध न होगा किन्तु धर्म और सुख सम्पत्ति की वृद्धि का कारण होगा।

३ जैन धर्म सर्वत्र फैलने नहीं पाता इसका कारण यही है कि हमारे जैन बन्धु गच्छ कदाग्रह में फँसकर सिद्धान्तों के तत्त्वों को नहीं फैला सकते। गच्छ भेद कोई मत भेद नहीं किन्तु अलग अलग आचार्यों की समाचारी है। इसलिये कदाग्रह करना व्यर्थ है।

—— ० ——

तेरहवाँ पाठ।

ईश्वर-कर्तृत्व पर विचार।

१ कई लोग ईश्वर को जगत् का कर्ता मानते हैं। विचार से देखा जाय तो उनका कहना ठीक नहीं है। क्योंकि ईश्वर को जगत् का कर्ता मानने से दयालु नहीं हो सकता। जगत् में बहुत से प्राणी दुःखी देखने में आते हैं यदि ईश्वर जगत् का बनाने

वाला माना जाय तो वह दयालु होने से सभी को सुखी ही पैदा करता। यदि कहा जाय कि जीवों के जैसे कर्म होते हैं, ईश्वर उन्हें वैसे ही सृष्टि के आदि में रचता है इस लिये ईश्वर की दयालुता में कोई बाधा नहीं हो सकती, क्योंकि वह न्यायकारी है तो उन्हें जानना चाहिये कि अगर ईश्वर सर्वशक्तिमान और न्यायकारी है तो वह जीवों को पहले बुरे कर्मों से क्यों नहीं रोकता।

२ इस लिये द्रव्य नय की अपेक्षा से यह जगत अनादि काल से ऐसा ही चला आया है और ऐसे ही स्थित रहेगा। और पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से पदार्थों का परिवर्तन होने से ईश्वर जगत् का कर्त्ता सिद्ध नहीं होता। इसी कारण से जीव अनादि काल से शुभाशुभ कर्मों के अनुसार सुख दुःख भोगता है। यही मानना यथार्थ है।

—— o ——

चौदहवाँ पाठ।

श्रावक का कृत्य।

१ प्रभात को जल्दी उठ कर सामायिक प्रतिक्रमण तथा स्वाध्याय करना चाहिये।

२ श्रीजिनमन्दिर में जा कर द्वार में प्रवेश करने के पहले निसिहि (सांसारिक कार्य छोड़ने रूप) कहना चाहिये।

३ मन्दिर जी का काम काज या कचरा जाला वगैरह सम्हाल स्वयं करने योग्य हो तो आप करे और अन्य से कराने योग्य हो तो अन्य से करावे।

४ दूसरी "निसिहि" करके मन्दिर का कार्य छोड़ कर तीन प्रदक्षिणा भगवान् के दाहिनी तरफ से देना, सम्यग् दर्शन सम्यग् ज्ञान और सम्यक् चारित्र का आरोपण रूप देनी चाहिये।

५ यदि प्रभु की अङ्गपूजा करनी हो तो शरीर शुद्धि तथा शुद्ध वस्त्र पहन कर पहले तीन प्रदक्षिणा उपरोक्त विधि पूर्वक दे कर जिनमन्दिर में कचरा साफ कर मयूर पिच्छ से प्रभु की अङ्ग प्रमार्जना करके जीवजन्तु की रक्षा करनी चाहिये।

६ भगवान् की डावीं बाजू धूप खेवना तथा दाहिनी बाजू घृत का दीपक करना चाहिये।

७ 'पञ्चामृत' * से प्रक्षाल कर शुद्ध जल से स्नान कराके सात अङ्गलूहण करके 'नव अङ्ग पूजा' + करनी। पीछे शुद्ध पञ्च वर्ण के पुष्प चढ़ा कर हार और मुकुट कुण्डल आभूषण अलङ्करणादि धारण करना चाहिये।

८ अष्ट द्रव्य ‡ आदि से अग्र पूजा करके आरती मङ्गल-

---

* १ दूध, २ दही, ३ घृत, ४ शक्कर, ५ जल यह पञ्चामृत कहा जाता है।

+ १ चरण, २ घुटने, ३ हाथ ४ खंधे (कंधे) ५ मस्तक, ६ ललाट, ७ कण्ठ, ८ हृदय और ९ नाभि ये नौ अङ्ग गिने जाते हैं।

‡ १ न्हवण (जल), २ विलेपन, ३ कुसुम, ४ धूप, ५ दीप, ६ अक्षत, ७ नैवेद्य, और ८ फल ये अष्ट द्रव्य हैं।

दीपक उतार कर पीछे चतुर्गति निवारण रूप चाँवल का स्वास्तिक (साथिया) करके ऊपर सम्यक् ज्ञान, सम्यक्दर्शन और सम्यक् चारित्र रूप तीन पुञ्ज (ढगली) बना कर ऊपर चन्द्राकार सिद्धिशिला बना कर सिद्धिरूप ढगली उसके ऊपर करके फल चढ़ाना चाहिये।

९ तीसरी "निसिहि" कहके भाव पूजा करनी यानी मन, वचन और काया रूप तीर्थ खमासमणा देकर स्त्री को भगवान के बाईं तरफ पुरुष को दाहिनी बाजू डाबा गोडा ऊचा करके विधिपूर्वक चैत्यवन्दन करना। पीछे तीन बार "आवस्सहि" कर के घंटा बजाते हुए जैनालय से बाहर जाना चाहिये।

१० चौरासी आशातना जिनालय की अवश्य वर्जनी चाहिये। तथा देव द्रव्य की रक्षा भले प्रकार करने से बड़ा फल है।

११ मुनि महाराज हों तो तीन खमासमण देकर सुख साता पूछ कर अमुट्ठिओ देकर स्थिर चित्त से व्याख्यान सुनना चाहिये।

१२ नवकारसी पोरसी आदि का पच्चक्खाण तथा चतुर्दश नियम का करना भी उचित है।

१३ मुनि महाराज तथा साधर्मी की, वयावच्च तथा आहारादि से अवश्य भक्ति करनी चाहिये।

१४ धर्मशास्त्र तथा नीति का अभ्यास हमेशा करना चाहिए तथा राजकीय भाषा तैसे ही कलाकौशलता जरूर सीखनी चाहिए।

१५ देव द्रव्य, ज्ञानद्रव्य, धर्मद्रव्य तथा कन्याविक्रय द्रव्य भक्षण करना महापाप है। दुर्गति का कारण होने से इस को अवश्य वरजना चाहिए।

१६ कम देना अर्थात् तोले मासे कम ज्यादह रख कर झूठ बोल कर तथा झूठी साक्षी भर कर आजीविका करना पाप है। इस वास्ते न्याययुक्त शुद्ध व्यापार करना चाहिये सट्टा करना अच्छा नहीं, आखिर पछताना पड़ता है। कर्जा करना दुखदाइ है, अगर करा भी तो वायदे माफिक जल्दी दे देना चाहिये। शुद्ध व्यवहार ही सुख का साधन है।

१७ धर्म विरुद्ध, राज विरुद्ध, तथा लोक विरुद्ध व्यापार नहीं करना चाहिये। चोर तथा हिंसक लोगों के साथ व्यवहार नहीं करना चाहिये। पन्द्रह कर्मादान वाणिज्य, अवश्य त्याग करने योग्य है।

१८ अपने लाभ में से कुछ भी हिस्सा धर्म कार्य्य सात क्षेत्र वगैरह के लिये निकालना चाहिये।

१९ शुद्ध भोजन करना चाहिये अर्थात पानी छान कर और अनाज धोकर काम में लाना चाहिये।

२० जमीकन्द, बासी विदिल, मक्खन और अचार वगैरह बाईस अभक्ष बत्तीस अनन्त काम त्यागने चाहिये।

२१. सन्ध्या समय देवदर्शन दीपक आरती मङ्गल दीवा उतारना चाहिये। वैसे ही रात्रि को चौविहार तेविहार आदि पच्चखाण करके देवसि प्रतिक्रमण करना और कुछ समय के लिये शास्त्र स्वाध्याय अवश्य करते रहना चाहिये।

२२ रात्रि को सोते समय सभी जीवों को क्षमा कर चार शरण चिन्तवन कर नवकार स्मरण करके निद्रा लेनी चाहिये।

२३ अष्टमी चतुर्दशी आदि पर्व की तिथियों में हरा शाक आदि सचित्त का त्यागन करना तथा शील पालना चाहिये।

२४ साल भर में शत्रुञ्जय, गिरनार, सम्मेतशिखर जी, आबू, चम्पापुरी, पावापुरी, राजगिरी, केसरिया जी, अन्तरीक्षजी, हस्तिनागपुर, माडवजी और मक्षी आदि किसी भी तीर्थ की यात्रा अवश्य करनी चाहिये।

२५ जन्म भर में कोई भी जिनमन्दिर, जीर्णोद्धार, शास्त्रोद्धार, साधुसेवा, विद्याशाला, जीवरक्षा आदि धर्म-सस्था को यथा शक्ति खोलकर जन्म सफल करना चाहिये।

सौभाग्यमल्ल और मौजीलाल की कथा।

श्रीपुर नाम का एक नगर था उसमें धर्मचन्द्र नामक एक जैन श्रावक रहता था। उसकी स्त्री का नाम प्रभावती था। यह साधारण स्थिति का आदमी था। इसके दो लड़के

थे, एक का नाम सौभाग्यमल और दूसरे का नाम मौजीलाल था। सौभाग्यमल अपने पिता और गुरु की आज्ञा मानता था और विद्या पढ़ने में बहुत शौक रखता था। वह विनयवान् और सच्ची बात करने वाला था। इसलिये माता पिता और दूसरे लोग भी इसके साथ प्रेम करते थे। जब सौभाग्यमल युवावस्था को पहुंचा तब एक सद्गृहस्थ के घर उसका विवाह हुआ। उसकी स्त्री का नाम विद्यावती था। सौभाग्यमलजी धर्मात्मा होने से यथाशक्ति धर्म के हरएक कार्य्य में (देवपूजा, सामायिक, व्याख्यान श्रवण, प्रतिक्रमण, पौषध, तीर्थ-यात्रा, दान, परोपकार, साधर्मी और दीन दुखियों को योग्य मदद देना, औषधालय धर्मशाला, पशुशाला और पाठशाला आदि बनाने में) तथा सार्वजनिक फायदे के कामों में योग्य कोशिश करते थे।

सौभाग्यमलजी की योग्यता और होशियारी को देख कर एक धनिक सेठ बुधमलजी ने उसे अपने पास रख कर एक दुकान खोला, जिसमें सौभाग्यमल का हिस्सा रक्खा। सौभाग्यमल की सलाह से रोजगार करने से उसने बहुत फायदा उठाया। कई सज्जन सौभाग्यमलजी के पास आकर धर्म, नीति और व्यापार सम्बन्धी वार्तालाप करते रहते थे। इसी कारण सेठ सौभाग्यमलजी का मान तथा यश राजा प्रजा में बहुत प्रसिद्ध हुआ। सुखपूर्वक धर्म, अर्थ और काम इन तीनों वर्ग के साधन करते हुए आखिर में पूर्णावस्था भोग

कर, सर्व पुत्र, पौत्रादि परिवार का ममत्व छोड़ कर समाधि पूर्वक देव, गुरु, धर्म का स्मरण करते हुए सद्गति को प्राप्त हुए।

मोजीलाल अविनयवान् था। माता पिता और विद्या गुरु का हुक्म नहीं मानने से वह मूर्ख रह गया। इतना ही नहीं बल्कि माता पिता के देहान्त होने पर दुर्व्यसन (जुआ, चोरी, जारी, नशा आदि) का सेवन करने से बड़ा दुःखी हो गया था। कई बार बड़े भाई सौभाग्यमलजी ने उसको सहायता भी दी परन्तु फिर भी बुराई से बाज नहीं आता था। आखिर मर कर दुर्गति को प्राप्त हुआ। इस पाठ का सारांश यह है कि जो बालक अपने माता पिता और गुरु का हुक्म नहीं मानता है वह मोजीलाल की भांति मनुष्य जन्म को व्यर्थ खो देता है और जो गुरु का हुक्म मानता है, विद्या अच्छी तरह से पढ़ता है, वह सौभाग्यमल की तरह दुनिया में मान प्रतिष्ठा और सुयश को प्राप्त करता है।

पन्द्रहवाँ पाठ।

अजीव के भेद।

अजीव पाँच प्रकार के होते हैं —

१ पुद्गल, २ धर्म, ३ अधर्म, ४ आकाश, ५ काल।

पुद्गल, उसे कहते हैं, जिसमें स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण पाए जावें।

पुद्गल के कई भेद हैं। स्थूल (मोटा) पुद्गल तो आँखों से देखने में आता है, परन्तु सूक्ष्म (बारीक) पुद्गल नहीं दिखाई देता। पुद्गल के सबसे छोटे टुकड़े को परमाणु कहते हैं। दो या दो से जियादह मिले हुए पुद्गल परमाणुओं को स्कंध कहते हैं। धूप, छाया, अँधेरा, चाँदना सब पुद्गल की पर्याए (हालतें) हैं।

२ धर्म उसे कहते हैं, जो जीव और पुद्गलों को चलने में सहकारी हो अर्थात् मदद देता हो। जैसे जल मछली को चलने में सहकारी है। यह पदार्थ तमाम लोक में पाया जाता है और अपनी आँखों से देखने में नहीं आता।

३ अधर्म उसे कहते हैं, जो जीव और पुद्गलों के ठहरने में सहकारी हो। जैसे पेड़ की छाया थके हुए मुसाफिर को ठहरने में सहकारी है। यह पदार्थ भी तमाम लोक में पाया जाता है और अपनी आँखों से देखने में नहीं आता।

धर्म अधर्म द्रव्य जीव पुद्गल को प्रेरणा करके चलाते या ठहराते नहीं हैं, परन्तु जब वे चलते हैं अथवा ठहरते हैं उस समय उनकी मदद करते है। हाँ यह जरूर है कि यदि धर्म द्रव्य न हो तो कोई पदार्थ नहीं चल सकता और यदि अधर्म

नोट-पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन पांच प्रकार के अजीवों में एक जीव में द्रव्य और मिलाने से छह द्रव्य हो जाते हैं। इन छहों द्रव्यों में से काल द्रव्य को छोड़ कर शेष के पाँच द्रव्य पञ्चास्तिकाय कहलाते हैं।-काल द्रव्य कायवान् नहीं है। उसका एक एक अणु अलग है।

द्रव्य न हो तो कोई पदार्थ नहीं ठहर सकता। यहाँ धर्म अधर्म से साधारण धर्म अधर्म न समझना चाहिए जिनके अर्थ पुण्य पाप के हैं।

४ आकाश उसे कहते हैं, जो अन्य चीज़ों को अवकाश (स्थान) दे। अर्थात् यह वह पदार्थ है, जिसमें सब चीज़ें रहती हैं।

इसके दो भेद हैं —१ लोकाकाश, २ अलोकाकाश। लोकाकाश में जीव, अजीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, वगैरह सब चीज़ें पाई जाती हैं, परन्तु अलोकाकाश में केवल आकाश ही आकाश है और कुछ नहीं।

५ काल उसे कहते हैं, जो चीज़ों की हालतों के बदलने में मदद देता है। व्यवहार में पल, घड़ी, पहर, दिन, सप्ताह (हफ्ता), पक्ष (पखवाड़ा), मास वर्ष वगैरह को काल कहते हैं।

प्रश्नावली।

१ कौन कौन द्रव्य लोक में पाए जाते हैं? क्या अलोक में भी कोई द्रव्य है?

२ आकाश के कितने भेद हैं? नाम सहित बताओ? जहाँ हम बैठे हुए हैं, वहाँ पर आकाश द्रव्य है या नहीं?

३ उन द्रव्यों के नाम बताओ जिन में चेतनता पाई जाती है?

४ यदि धर्म्म द्रव्य न हो, तो क्या हम चल सकते हैं?

५ अजीव के कितने भेद हैं और उनमें से कौन सर्वत्र पाया जाता है?

६ क्या यह ज़रूरी है कि छहों द्रव्य एक स्थान पर हों? क्या कोई ऐसा स्थान भी है, जहा केवल एक या दो द्रव्य ही हों?

७ पञ्चास्तिकाय के नाम बताओ?

८ अँधेरा, चाँदना, शब्द दूध, धूप, छाया, वायु कौन द्रव्य है?

९ अणु और स्कंध में क्या भेद है?

सोलहवां पाठ।

रूप, रस, गन्ध, स्पर्श।

रूप, रस, गन्ध और स्पर्श ये पुद्गल के गुण हैं। ये सदा पुद्गल में ही पाये जाते है। पुद्गल को छोड कर और किसी द्रव्य म नहीं रहते। ये चारो ही सदा साथ साथ रहते हैं। जैसे पके हुए आम में पीला रूप है, मीठा रस है, अच्छी गन्ध है, और कोमल स्पर्श है।

रूप उसे कहते है, जो नेत्र इन्द्रिय से जाना जाय। वह पाँच प्रकार का होता है। कृष्ण (काला), नील (नीला), रक्त (लाल), पीत (पीला) और श्वेत (सफेद)। जैसे कोयले में काला, नील में नीला, गेरू में लाल, सोने में पीला और दूध में सफेद रूप है।

रूप का दूसरा नाम रंग है। इन रंगों के मिलाने से और भी कई रंग हो जाते हैं। जैसे नीला और पीला रंग मिलाने से हरा रंग बन जाता है।

रस उसे कहते हैं, जो रसना (जिह्वा) इन्द्रिय से जाना जाय। रस पाँच प्रकार का होता है। तिक्त (तीखा अथवा चर्परा), कटु (कड़ुवा), कषाय (कसेला), आम्ल (खट्टा) और मधुर (मीठा)। जैसे मिर्च में तीखा, नीम में कड़ुवा, आँवले में कसैला, नीबू में खट्टा और गन्ने में मीठा रस होता है।

गन्ध उसे कहते हैं, जो घ्राण (नासिका) इन्द्रिय से जाना जाय। गन्ध दो प्रकार की होती है, सुगन्ध (खुशबू) और दुर्गंध (बदबू)। जैसे गुलाब के फूल में सुगंध और मिट्टी के तेल में दुर्गंध होती है।

स्पर्श उसे कहते हैं, जो स्पर्शन इन्द्रिय से या छूने से जाना जाय। स्पर्श आठ प्रकार का होता है। स्निग्ध (चिकना), रूक्ष (रूखा), शीत (ठंडा), उष्ण (गरम), मृदु (कोमल, नरम), कर्कश (कठोर, कड़ा), गुरु (भारी) और लघु (हलका)। जैसे घी में स्निग्ध, बालू में रूक्ष, पानी में शीत अग्नि में उष्ण, मक्खन में मृदु, पत्थर में कर्कश, लोहे में गुरु और रुई में लघु स्पर्श रहता है।

रूप ५, रस ५, गंध २ और स्पर्श ८ इस प्रकार सब मिल कर पुद्गल में २० गुण होते हैं।

प्रश्नावली।

१ रूप और स्पर्श में क्या भेद है? जिस वस्तु में रस होता है, उसमें स्पर्श होता है या नहीं?

२ किसी ऐसी वस्तु का नाम लो, जिसमें रूप, रस, स्पर्श न पाये जाय।

३ रूप और रस के कितने भेद हैं? नीचे लिखे द्रव्यों में कौन २ गुण है?—पत्थर, ताँबा, अंगूर, लकड़ी तिनका, ओला, इतर दही।

४ वायु में कैसा स्पर्श है? धूप, चाँदना और अंधेरे में कैसा रूप है? जल में कैसी गंध है और घी में कैसा रस है?

५ नीचे लिखे गुण किन २ इन्द्रियों से जाने जाते हैं?—मधुर, रूक्ष, पीत, शीत, कटु, मृदु।

६ किसी ऐसी चीज का नाम लो, जिस में सफ़ेद रूप हो, स्निग्ध स्पर्श हो, खट्टा रस हो, और गंध कुछ बुरी हो।

७ षट् द्रव्यों में कौन २ द्रव्य रूपी हैं।

कषायों के भेद	अनन्तानुबन्धी	अप्रत्याख्यानी	प्रात्याख्यानी	संज्वलन.
क्रोध	पर्वत की रेखा समान	मिट्टी की रेखा समान	धूली रेखा समान	जलरेखा समान
मान	पत्थरके स्तंभ समान	हड्डी समान	काष्ठ की लकड़ी समान	नेतर (बेंद) की छड़ी समान
माया	बाँस की जड़ समान	मींढे के सींग समान	बैल के मूत्र समान	बाँसकी छाल समान
लोभ	किरमजी रंग समान	गाड़ी के पहिये के कीट समान	सरायले के मैल समान	हल्दी के रंग समान
स्थिति	यावज्जीव	एक वर्ष	चार मास	१५ दिन
गति	नरकगति	तिर्यंचगति	मनुष्य गति	देव गति
घातक	सम्यक्त्व का घात करे	देशविरति का घात करे	सर्व विरति का घात करे	यथाख्यात चारित्र का घात करे

जैन पाठशालाओं का पठन क्रम।

प्रथम श्रेणी - हिन्दी जैन शिक्षा पहिला भाग और भागपंचवर्णबोध
द्वितीय ,,—हिन्दी जैन शिक्षा दूसरा भाग और चैत्यवन्दन।
तृतीय ,,—हिन्दी जैन शिक्षा तीसरा भाग और सामायिक।
चतुर्थ ,,—हिन्दी जैन शिक्षा चौथा भाग और देवसिराई प्रतिक्रमण।
पञ्चम ,,—हिन्दी जैन शिक्षा पञ्चम भाग और पक्षप्रतिक्रमण।
षष्ठ ,,—हैम लघुप्रक्रिया और जीवविचार।
सप्तम ,,—धनञ्जयनाममाला प्रथम काण्ड और नवतत्त्व।
अष्टम ,,—सिन्दूरप्रकरण और दण्डक।
नवम ,,—योगशास्त्र मूलप्रकाश और लघु संग्रहणी।
दशम ,,—तत्त्वार्थसूत्र और बृहत्संग्रहणी।
एकादश ,,—स्याद्वादमञ्जरी और क्षेत्रसमास।
द्वादश ,,—षड्दर्शन समुच्चय और कर्मग्रन्थ।

यह पठन क्रम धार्मिक शिक्षा की दृष्टि से लिखा गया है। इस लिये इसके अलावा बालकों को स्कूल में भेज कर गणित, भूगोल, हिन्दी, इंग्लिश आदि भी पढ़ाना आवश्यक है। तथा प्रत्येक विद्यार्थी को संगीत, व्यायाम, वक्तृत्व, कला, उद्योग आदि विषयों का भी अभ्यास करना चाहिये।

यह पठन क्रम सर्व साधारण जैनतर बुधों के अभ्यास करने में सुभीते के लिये लिखा गया है। इस लिये इस के अतिरिक्त और व्याकरण, काव्य, कोष, न्याय आदि विषय के ग्रन्थ देने चाहिये, ताकि तत्त्वज्ञान की वृद्धि हो।

हाल में जैन पाठशालाओं में पूर्वोक्त उच्च श्रेणी के ग्रन्थों का अभ्यास कराने वाले अध्यापक मुश्किल से मिलते हैं इसलिये मुनि महाराज अथवा अन्य किसी जैन शैली के जानने वाले विद्वान् से अभ्यास कराना चाहिये।